ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई का—बहुत आभारी हूँ जिन की रचनाओं और पुस्तकों में से मैं ने इस संग्रह के लिए लेख लिए हैं। 'हिन्दी गद्य का विकास' शीर्षक लेख की सामग्री मुझे प्रोफेसर अयोध्यानाथ एम० ए० की 'गद्य मुक्तावली' नामक पुस्तक से प्राप्त हुई है। उसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ। जहाँ तक मुझ से बन पड़ा है मैं ने सभी लेखकों और प्रकाशकों से उनकी रचनाओं का उपयोग करने की अनुमति लेने का यत्न किया है और उन्हों ने कृपापूर्वक मुझे अनुमति प्रदान भी कर दी है, परन्तु फिर भी दो एक सज्जनों को जवाबी पत्र लिखने पर भी उनका कोई उत्तर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण शायद यह हो कि उनका ठीक ठिकाना मुझे मालूम न रहा हो। उन सज्जनों से, उनकी अनुमति प्राप्त किए बिना ही उनके लेखों का उपयोग करने के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

साहित्य सदन
कृष्णनगर—लाहौर।

—सन्तराम

नदियाँ उस में आकर मिल जाती है। इस प्रकार हिन्दी में भी संस्कृत, फारसी, अरबी, अँगरेजी आदि अन्य भाषाओं के शब्द और मुहावरे समय समय पर मिलते रहे हैं। उन्हीं के मिश्रण का परिणाम इस का वर्तमान रूप है।

हिन्दी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मत हैं। कुछ लोगों की राय है कि पहले संस्कृत भाषा बोली जाती थी। उसमें से पहले पाली भाषा निकली। बौद्धों का साहित्य इसी भाषा में है। पाली से फिर मराठी, शौरसेनी, मागधी आदि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ निकलीं। फिर इन अपभ्रंश भाषाओं से राजस्थानी, ब्रज और हिन्दी को रूप वालों का जन्म हुआ। कुछ दूसरे विद्वान यह कहते हैं कि संस्कृत कभी भी सब साधारण की भाषा नहीं हुई। केवल विद्वान लोग ही इसका उपयोग साहित्य में किया करते थे। सर्वसाधारण अपने नित्य के व्यवहार में प्राकृत का ही उपयोग करते थे। उनकी इस प्राकृत से ही मराठी, गुजराती, पंजाबी और हिन्दी का क्रमशः विकास हुआ है। परन्तु इस बात में सभी विद्वान सहमत हैं कि हिन्दी शूरसेन देश अर्थात् ब्रज मण्डल में बोली जाने वाली प्राकृत की पुत्री है। इस पुरानी हिन्दी का आरम्भ विक्रम की आठवीं शताब्दी में माना जाता है।

हिन्दी में जो सब से पुराने ग्रन्थ मिलते हैं वे पद्य में हैं। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी का काल विभाग किया

(३) उत्तर मध्य काल (रीति-काल)। संवत् १७००—१९०० वि०।

(४) आधुनिक काल (गद्य काल)। संवत् १९००—अब तक।

कालों के ये नाम उस काल में होने वाली रचनाओं की प्रधानता के कारण रखे गये हैं। उदाहरण के लिए, आधुनिक काल में यद्यपि लोग पद्य भी लिखते हैं परन्तु प्रधानता गद्य की ही है। इस लिए इसका नाम गद्य काल रखा गया है।

हिन्दी गद्य का सब से पुराना ग्रन्थ 'खुमान रासो' माना जाता है। इस से पुराना ग्रन्थ और कोई नहीं मिला। इसका रचना काल संवत् ९०० के लगभग अनुमान किया गया है। हिन्दी गद्य का पहला उदाहरण तेरहवीं शताब्दी में महाराजा पृथ्वीराज और चित्तौर के रावल समर सिंह के दान पत्रों में मिलता है। 'मेवाड़ की सनद' संवत् १२२६ में लिखी गई थी। उस की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधिराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसीं वचनातु दा अमा आचारजु ठाकुर रूसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणीराज में ओषद थारी लावेगा ओषद ऊपरी माल की थाकी है ओ जनाना में थारा वसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाणे प्रधान

ाम्रमल के सह जो चौभाग पर होत।

इसके अनन्तर 'भुवन दीपिका' नामक ज्योतिष ग्रन्थ की भाषा टीका (सं० १६७१) फिर संवत १६८० में लिखी जटमल कवीश्वर कृत 'गोरा बादल की कथा', फिर वैकुण्ठ शुक्ल (१६७५ –८४) रचित 'वैशाख माहात्म्य' और 'अग हन माहात्म्य' नामक दो ग्रन्थ ब्रजभाषा गद्य में मिलते हैं। इन के बाद संवत १७०७ में मनोहर दास निरंजनी की कुछ गद्य पुस्तकें आती हैं। इसके बाद संवत १७१५ के आस पास जगनी चारण कृत 'रतनमहेसदासोत वचनिका" मिलती है। यह राज पूतानी हिन्दी में है। इस के बाद (संवत १७०७—१७८१ विक्रमी) जोधपुर के राजा यशवन्त सिंह के पुत्र अमरसिंह की "गुण सार" नामक पुस्तक मिलती है। इसी काल (१७६८— १८४०) में अमरसिंह कायस्थ ने 'बिहारी सतसई' की गद्य में टीका लिखी। इस का नाम 'अमर चन्द्रिका' है। संवत १८२८ के लगभग बलेश ने मतिराम के 'रसराज' का तिलक किया।

इस समय उत्तर भारत में अँगरेजी राज्य स्थापित हो चुका था। अँगरेजों को ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत होती थी जिन से वे देश की बोल चाल की भाषाएँ सीख सकें। इस लिए इन्हों ने हिन्दी गद्य में पुस्तकें लिखवाईं। इन्हीं दिनों मुन्शी सदासुखलाल (संवत् १८०५—१८८१) ने

शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। उनकी हिन्दी का नमूना देखिए—

किसी समय में ब्रह्मा के पुत्र एसे उद्दालक मुनि भए कि जिन के दर्शन से लोग पवित्र होते थे। वेद पुराण श्रुति स्मृति में बहुत निपुण और दाता दयालु कहिए तो वसे ही, बड़े समर्थ सब मुनियों में श्रेष्ठ, कि जिन का तपस्या ही धन था उनके सुहावन आश्रम पर कि जिस को बड़े बड़े मुनि लोग नित्य आय सेवें और जहाँ नाना प्रकार के वृक्षों पर लता छा रही थीं—पिप्पलाद मुनि आन पहुँचे।

सदासुखलाल और सदल मिश्र की भाषा एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

इसके बाद कोई ६० वर्ष तक हिन्दी की प्रगति रुकी सी रही। कारण यह हुआ कि अँगरेजों ने अदालतों और सरकारी दफ्तरों में उर्दू भाषा और फारसी लिपि को प्रोत्साहित किया इस से उर्दू की उन्नति हिन्दी से पहले आरम्भ हो गई। फिर भी हिन्दी के समर्थकों ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। राजा शिवप्रसाद ने संवत १६०२ में 'बनारस अखबार' निकाला। इस की लिपि नागरी और भाषा उर्दू होती थी। इस के पाँच वर्ष बाद काशी से 'सुधाकर' निकला। फिर संवत १६०६ में आगरे से 'बुद्धिप्रकाश' निकला। इसकी भाषा 'बनारस अखबार' की अपेक्षा सुधरी हुई होती थी।

इन्हीं दिनों आर्य समाज के पूज्य प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी सरस्वती (संवत् १८७१—१६४०) ने संस्कृत के प्रकाण्ड

नगरी', 'नील देवी', 'चन्द्रावली' आदि अनेक नाटक लिखे। इन्होंने 'काश्मीर कुसुम' और 'बादशाह दर्पण' आदि कुछ थोड़े से इतिहास ग्रन्थ भी लिखे। हरिश्चन्द्र ने वर्तमान हिन्दी गद्य की धाराओं को नई दिशाओं से बहुत दिन में दूर कर एक ठीक मार्ग में लगा दिया। इनकी भाषा बड़ी परिमार्जित प्रभावशालिनी और गँवारूपन से रहित होती थी।

इस समय हिन्दी में बिहार बन्धु, हिन्दी प्रदीप आनन्द-कादम्बिनी पीयूष प्रवाह और भारत जीवन आदि कई अच्छे पत्र भी निकलने लगे थे। इस के अतिरिक्त लेखकों की भी एक बड़ी मण्डली तैयार हो गई थी। उन में से कुछ के नाम ये हैं—बद्रीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, तोताराम बी० ए०, जगमोहनसिंह, श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, केशवराम भट्ट और राधाचरण गोस्वामी। इन में श्रीयुत बालकृष्ण भट्ट की गद्य शैली भारतेन्दु की शैली से मिलती है। इन की भाषा में कहीं कहीं बैसवाड़ी और पूर्वी हिन्दी के शब्द आए हैं। वे अँगरेजी शब्दों का भी प्रयोग करते थे। इनके लेखों में हास्य की मात्रा भी खूब होती थी। इन्होंने संवत् १९३४ में 'हिन्दी प्रदीप' नामक मासिक पत्र निकाला और 'सौ अजान और एक सुजान' तथा 'नूतन ब्रह्मचारी' नाम के दो छोटे छोटे उपन्यास भी लिखे।

अलीगढ़ के बाबू तोताराम बी० ए० (सं० १९०४—१९५९)

के नियमों का पालन करना आवश्यक न समझते थे। उनकी भाषा सदोष और बे मुहावरा होती थी। इस दोष को दूर करने का प्रयत्न आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (जन्म संवत् १९२१) ने किया। वे सन् १९०३ में 'सरस्वती' के सम्पादक हुए और उन्होंने हिन्दी को खूब मांजा और लेखकों की व्याकरण सम्बन्धी भूलों की आलोचना करके उनके कान खड़े किए। पहले हिन्दी लेखक विराम चिन्हों पर बहुत कम ध्यान दिया करते थे। अब अँगरेजी और बँगला आदि दूसरी भाषाओं की देखा देखी इस में भी विराम चिन्हों का प्रयोग होने लगा।

इस समय हिन्दी का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चुका है। इस में सब विषयों पर दूसरी भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों के अनुवाद हो चुके हैं और हो रहे हैं। अनुवाद ही नहीं इतिहास, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना, यात्रा, विज्ञान आदि के मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। औपन्यासिकों में श्रीयुत प्रेमचन्द बी० ए० का नाम और नाटककारों में श्रीयुत जयशंकर प्रसाद तथा श्रीयुत नारायण प्रसाद बेताब का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस समय सरस्वती, माधुरी, चाँद, सुधा, विश्वामित्र, गंगा, युगान्तर, वीणा, और वाणी आदि अनेक उच्च कोटि के सचित्र मासिक पत्र तथा पत्रिकाएँ निकल रही हैं। इन में सब विषयों पर अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। बालकों

ऐसो वाको मन हतो । याही तें सब लोगन ने वाको नाम खंडन पाड्यो हतो । सो एक दिन श्री महाप्रभु जी के सेवक वैष्णवन की मंडली में आयो । खंडन करन लाग्यो । वैष्णवन ने कही, जो तेरे शास्त्रार्थ करनो होवै तो पंडितन के पास जा, हमारी मंडली में तेरे आयबे को काम नाहीं । इहाँ खंडन मंडन नहीं है । भगवद्वार्ता को काम है । भगवद्वार्ता सुननी होवै तो इहाँ आवो । ताहू पाछे मानी नाहीं । नित्य आयके खंडन करे । एसी वाकी प्रकृती हती । फेर एक दिन वैष्णवन को चित्त बहुत उदास भयो । जब वो खंडन ब्राह्मण घर में सूतो हतो तब चार जने वाकू मुग्दर लेके मारन लगे । तब वाने कही, तुम मोकू क्यों मारत हो, तब चार जनेन ने कही तुम भगवद्धर्म खंडन करत हो । और भगवद्धर्म सर्वोपरि है । सर्व धर्मन तें श्रेष्ठ है । केवल भगवत्परायण है । भगवत्समर्पण करनो है । तन मन धन जिनने निवेदन कर्यो कछु अब बाकी रह्यो नहीं है । सो सिद्ध भये हैं । एसे धर्मन कु खंडन करे है । तासु ताकु मारे हैं । ये सुनके खंडन ब्राह्मण तिन चार जनेन के पायन पड्यो । और दूसरे दिन भगवत-मंडली में आयके वैष्णवन के पायन पड्यो और वैष्णवन सु बीनती करी के मोकु कृपा करके वैष्णव करो और वैष्णवन कृपा करके श्रीगोकुल आय के श्रीगुसाईं जी को सेवक भयो । सो ये खंडन ब्राह्मण श्रीगुसाईंजी की कृपा तें मंडन भयो ।

—[दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता से]

एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली की पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप से खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे पुराने धुराने, डाँग, बूढ़े घाग यह खटराग लाये। सिर हिलाकर, मुँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर आँखें फिराकर लगे कहने--यह बात होते दिखाई नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जितने भले लोग आपस में बोलते चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का। मैंने उनकी ठंडी साँस का टहोका खाकर झुँझलाकर कहा--मैं कुछ ऐसा बढ़ बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ-सच बोल कर उँगलियाँ नचाऊँ और बे सिर बे ठिकाने की उलझी-सुलझी बातें पचाऊँ। जो मुझसे न हो सकता तो, यह बात मुँह से क्यों निकालता? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता। इस कहानी का कहने वाला आप को जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं, कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेर कर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव भाव और कूद-फाँद, और लपट-झपट दिखाऊँ जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा, जो बिजली से भी बहुत चंचल अच-

३

वर्षा-शरद-ऋतु-वर्णन

लेखक—श्री लल्लूलाल

[लल्लूलाल का जन्म आगरे में सन् १७६३ ई० के लगभग हुआ था। आप फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता, में अध्यापक थे। वहां डाक्टर गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से इन्होंने व्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली के गद्य में प्रेम सागर नाम की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक से हिन्दी गद्य का बहुत प्रचार हुआ। इसीलिये इन को वर्तमान गद्य का जन्मदाता कहते हैं, यद्यपि इन से पहले सन् १६२३ में जटमल ने खड़ी बोली गद्य में गोरा बादल की लड़ाई लिखी थी। लल्लूजी लाल ने यथाशक्ति उर्दू शब्दों को अपने गद्य में स्थान नहीं दिया। इससे इन के गद्य में एक प्रकार की मृदुता सी आ गई है।]



औरंगज़ेब की फ़ौज का वर्णन

लेखक—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द

[राजा साहब का जन्म काशी में सन् १८२३ में हुआ था और सन् १८९५ में आपका देहान्त हो गया। आप यू० पी० में शिक्षाविभाग के इंस्पेक्टर थे। सिक्ख युद्ध में सरकार का साथ देने के कारण आपको राजा तथा सी० आइ० ई० की उपाधियाँ मिली थीं। आप हिन्दी के बहुत प्रेमी थे। आप की भाषा सरल होती थी परन्तु उस में उर्दू और फ़ारसी के शब्द बहुत रहते थे।]

निदान अब ज़रा औरंगज़ेब की फ़ौज पर निगाह करनी चाहिए, ज़रा इसके सर्दारों के घोड़ों को देखना चाहिए। दुम और यालें बिलकुल रँगी हुई, सोने-चाँदी के साज सिर से पैर तक लदे हुए,

अर्थात् सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है, इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने में उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते। इस ग्रन्थ में यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो जो सब मतों में सत्य सत्य बातें हैं वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो जो मत-मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन उन का खण्डन किया है। इस में यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मत मतान्तरों की गुप्त या प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आज कल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।

['सत्यार्थ प्रकाश' से]

बालमुकुन्द जी की शैली का झुकाव अधिकतर शुद्ध हिन्दी की ओर है राजा शिवप्रसाद की तरह उस में उर्दू शब्दों का भरमार नहीं। साधारणतः उन की भाषा में एक प्रकार की पैनीधार भी होती है।']

नारंगी के रस में ज़ाफ़रानी बसन्ती बूटी छान कर शिवशम्भु शर्मा खटिया पर पड़े मौजों का आनन्द ले रहे थे। ख़याली घोड़े की बागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी जकन्दें भर रहा था। हाथ-पावों को भी स्वाधीनता दी गई थी। वह खटिया के तूल अरज़ की सीमा उल्लंघन करके इधर-उधर निकल गये थे। कुछ देर इसी प्रकार शर्मा जी का शरीर खटिया पर था और ख़याल दूसरी दुनिया में। अचानक एक सुरीली गाने की आवाज़ ने चौंका दिया। कन-रसिया शिवशम्भु खटिया पर उठ बैठे। कान लगा कर सुनने लगे। कानों में यह मधुर गीत बारम्बार अमृत ढालने लगा—

प्रतिनिधि बना कर ब्रजवासियों का सन्तोष देने के लिये ब्रज में भेजा है। क्या उस राजप्रतिनिधि के घर जाकर शिवशम्भु होली नहीं खेल सकता? ओफ! यह विचार वैसा ही बेतुका है जैसे अभी वर्षा में होली गाई जाती थी। पर इसमें गाने वाले का क्या दोष है? वह तो समय समझ कर ही गा रहा था। यदि वसन्त में वर्षा की झड़ी लगे तो गाने वाले को क्या मलार गाना चाहिये? सचमुच बड़ी कठिन समस्या है। कृष्ण हैं, उद्धव हैं, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते। सूर्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चांदनी नहीं। माई लार्ड नगर ही में हैं पर शिवशम्भु उनके द्वार तक नहीं फटक सकता है, उनके घर चल कर होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माई लार्ड के घर तक बात की हवा नहीं पहुँच सकती! जहांगीर की भांति उसने अपने शयनागार तक ऐसा कोई घंटा नहीं लगाया जिसकी जंजीर बाहर से हिलाकर प्रजा अपनी फरियाद उन्हें सुना सके। उसका दर्शन दुर्लभ है। द्वितीया के चन्द्र की भांति कभी कभी बहुत देर तक नजर गड़ाने से उसका चन्द्रानन दिख जाता है सो दिख जाता है। लोग उँगलियों से इशारे करते हैं कि वह है। किन्तु दूज के चाँद के उदय का भी एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माई लार्ड के मुखचन्द्र के उदय के लिये कोई समय भी नियत नहीं।

७

मनसुखी और सुन्दर सिंह का क़िस्सा

[इस लेख के लेखक का नाम मालूम नहीं। इसकी भाषा मेरठ और दिल्ली ज़िले के देहात की है। ग्रामों की स्वाभाविक बोली होने से इस में मिठास खूब है।]

एक दफ़े बहार के मौसम में जब कि जाड़ा बीत गया और जङ्गल में तरह-तरह के बेल-बूटे और रंग-रंग के फूल खिलने लगे, अहीरपुर गाँव में सीतला का बड़ा मेला हुआ। वहाँ की तमाम औरतें और मर्द हाथों में पुजापा लिए अपने-अपने घरों से बाहर निकले। रस्ते में सम-वयस्क लड़कियाँ आपस में हँसती-चालती सीतला के सुहले गाती जाती थीं। इन में एक अहीर की लड़की, जिसका नाम मनसुखी था, अपने चचा सुजानसिंह नम्बरदार और चची सुन्दरकौर के साथ घर से

भगत कहा करे हैं, जैसी पहले करें थे। फिर पार्वती ने पूछा—मनसुखी, तेरे चाचा-चाची किस कारण माता जी के जात* देने आए हैं? उसने कहा—तुझे खबर नहीं? जब मेरे भाई के माता निकली और सारी देह में कहीं तिल रखने की जगह न रही और उसके बचने की आस जाती रही, उस समय मेरी चाची ने † पत्ताँड तक माता से ‡अरदास करके कहा था कि माता रानी, अपने गुलाम पर दया कर। जब यह पाँच बरस का होगा, मैं तेरी जात दूँगी, और तेरे नाम पर एक बछड़ा छोड़ूँगी, और भगत को जोड़ा पहनाऊँगी। सो अब मेरा मोहन भाई पाँच बरस का हो गया है। इसलिए इन जात देने आए हैं।

ये बातें इन लड़कियों में हो ही रही थीं कि इतने में सारे सब सीतला के मन्दिर के पास आ पहुँचे। मनसुखी पार्वती से जुदा होकर अपनी चची के साथ हो ली और अपने भाई मोहन को गोद में लेकर मन्दिर के भीतर गई। क्या देखती है कि यहाँ एक पीतल की मूर्ति फूल और हारों से लदी हुई रक्खी है। मनसुखी के चचा ने अपनी भार्या से कहा—ले मोहन की मा, पुजापा निकाल और छारे के हाथ से छुआ के महारानी पर चढ़ा दे और भगत जी को जोड़ा पहना दे, और बछड़े को छोड़ दे।

---

* भेंट। † ठोकियों की पहुँची। ‡ विनय।

को खाना खिला रही थी। सुजानसिंह ने अपनी स्त्री से मनसुखी के आने का जिक्र किया और कहा—मोहन की माँ, मनसुखी का [illegible] एक महीने पीछे आयगा और यह यहीं रहेगा। उसको [illegible] ने कहा—सामने की कोठरी खाली कर दूँगी। आँगन का [illegible] सामान धरा है। थोड़ी देर तक उसमें यहाँ बात होती रही। फिर मनसुखी और मोहन भीतर के दालान में अपनी खाट बिछा कर सो रहे। बाहर के दालान में चन्द्रकौर अपने छोटे बेटे को लेकर लेट गई और सुजानसिंह इसी दालान की कोठरी में जा पड़ा।

—["रसूम हिन्द' से]



किसी मत के एक विद्वान ने लिखा है कि मेरी माँ के बार-बार मुख चूमने ने मुझे चित्रकारों में प्रख्यात कर दिया। गुरु जितना पाठशाला में वर्ष और महीनों का परिश्रम कर सबों में सिखला सकता है उतना अपने घर में बच्चा माँ के अकृत्रिम सहज स्नेह से एक दिन में सीख लेता है। माँ के स्वाभाविक, सच्चे और अकृत्रिम प्रेम का प्रमाण इससे बढ़ कर और क्या मिल सकता है कि लड़का कितना ही रोता अथवा मुरझाया हुआ हो, माँ की गोद में जाते ही चुप हो जाता है और जहाँ थोड़ी देर तक लड़के ने दूध न पिया माँ के स्तन भर आते हैं, दूध टपकने लगता है और वह विकल हो जाती है। दस मास तक गर्भ में धारण करने का क्लेश, जनने के समय की पीड़ा, उसके पालन पोषण की चिन्ता, उसे नीरोग और प्रसन्न देख कर चित्त का हुलास, रोगी तथा अनमन देख अत्यन्त विकल होना इत्यादि सब माता ही में पाया जाता है। लड़का कुपूत और निकम्मा निकल जाय तो बाप उसका साथ नहीं देता, वह उसे घर से निकाल अलग कर देता है, पर माँ बहुधा पति को भी त्याग कर निकम्मे पुत्र का साथ देती है। दो चार नहीं वरन् हजारों ऐसी मातायें देखी गई हैं जिन्होंने बालक की अत्यन्त कोमल अवस्था ही में पिता के न रहने पर चक्की पीस पीस कर अपने पुत्र को पाला और उसे पढ़ा लिखा कर सब भाँति समर्थ और योग्य कर दिया। पुत्र भी ऐसे सुयोग्य हुए हैं कि सब भाँति भर-

मा अपनी प्रिय सन्तान के लिए कितना कष्ट सहती है जिसको स्मरण कर चित्त में वात्सल्य भाव का उद्गार हो आता है। माता के स्नेह में पिता के समान प्रत्युपकार की वासना भी नहीं है। दया माता देह धरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। टूटी फूस की झोपड़ी में जब मूसलाधार पानी बरस रहा है, फूस का छप्पर चारों ओर से ऐसा टपकता है कि कहीं तिल भर भी जगह नहीं बची है, न दरिद्रता के कारण इतना कपड़ा-लत्ता पास है कि आप ओढ़े और प्रिय सन्तान को ढाँप कर वृष्टि से बचावे, ऐसे समय में आधी रातों से अपने दुध-मुँहे बालक को ढाँपे माता उसको छाती से लगाये हुए है। अपने प्राण और देह की तनिक भी चिन्ता नहीं है, किन्तु वात और वृष्टि से पुत्र का कोई अनिष्ट न हो, इसलिए वह अत्यन्त व्यग्र हो रही है। पुत्र की रोगी और अस्वस्थ दशा में पलङ्ग के पास उदास बैठी मन मारे उसका मुँह ताक रही है। रात की नींद दिन का भोजन दुस्तर हो गया है। भाँति भाँति की मिन्नतें मानती है। जो कोई कुछ कहता है वह सब कुछ करती जाती है। अपनी जान तक चाहे चली जाय पर पुत्र को स्वास्थ्य लाभ हो। पिता को अपने शरीर पर इतना कष्ट उठाना कभी न भावेगा। यह माता ही है जो पुत्र के स्वाभाविक स्नेह के वश हो इतने-इतने दुःख सहती है। बुद्धिमानों ने इन्हीं सब बातों को सोच विचार कर लिख दिया है कि पिता से मा का गौरव सौ गुना अधिक

९

पाण्डवों का विवाह

लेखक—श्रीयुत महावीर प्रसाद द्विवेदी

[श्री द्विवेदी जी का जन्म सन् १८६४ ईसवी में रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक गाँव में हुआ था। आप पहले तार विभाग में नौकर थे। फिर नौकरी छोड़ कर आप हिन्दी-साहित्य की सेवा में लग गए। आपने प्रयाग की सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका, 'सरस्वती', का लगभग बीस वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया। आप हिन्दी के आचार्य माने जाते हैं। आपकी भाषा बड़ी परिमार्जित और जोरदार होती है। आप सदा सरल और छोटे वाक्य लिखते हैं। आपने संस्कृत तथा अँगरेजी के कई उत्तमोत्तम ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया है। आपने ५० से ऊपर ग्रन्थ लिखे हैं। अस्वस्थ रहने के कारण अब आपने लिखना छोड़ रक्खा है।]

इस इरादे से उन्हों ने एक ऐसा धनुष बनवाया था जिस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर झुकाना बड़ा कठिन काम था। उन्हों ने एक आकाश-यन्त्र भी तय्यार कराया था। यह यन्त्र अधर में लटका हुआ फिरा करता था। उसी यन्त्र में, बहुत ऊँचाई पर, एक निशाना लटकाया गया था। यह सब करके राजा द्रुपद ने मुनादी करा दी थी कि जो कोई इस धनुष को तान कर पाँच ही बाणों में फिरनेवाले यन्त्र के छेद के भीतर से निशाना मार सकेगा, उसी को मैं कन्यादान दूँगा।

इस के लिये नगर में मिली हुई एक साफ चौरस जमीन पर स्वयम्वर-स्थान बनाया गया। सभा स्थल के चारों ओर दीवार बनाई गई और खाइयाँ खादी गईं। फिर उस में जगह जगह पर द्वार बनाये गये। रङ्गभूमि में चारों तरफ दूध के समान शुभ्र राजभवन, मणियों से जड़ी हुई उनकी छत्त और आँगन, बराबर-बराबर जगह पर बने हुए एक ही तरह के सब दरवाजे, मनोहर सीढ़ियाँ और विचित्र पुष्पों की मालाओं से शोभित चँदोवे आदि अपूर्व शोभा धारण किये हुए थे।

राजा द्रुपद के प्रण को सुन कर चारों तरफ से राजा लोग आने लगे। कर्ण के साथ दुर्योधन आदि कुरु लोग, तथा बलदेव और कृष्ण आदि यादव लोग भी आये। अनेक स्थानों से ऋषि और ब्राह्मण लोग उत्सव देखने के लिये आये। राजा द्रुपद ने सब का यथोचित सत्कार किया और स्वयम्वर का दिन

"हे उपस्थित नरेश गण ! आप लोग ध्यान दीजिये। यह धनुष बाण और निशाना है। जो इस आकाश यन्त्र के बीचों-बीच के सुराख में से पांच बाण चला कर निशाना मार सकेगा, उसी को द्रुपद [illegible] वरमाला पहनावेगी।"

उसी स[illegible] [illegible]जाओं की सुन्दरियों में श्रेष्ठ द्रौपदी के दर्शन [illegible] हुए राजा लोग एक दूसरे को जीतने की इच्छा से [illegible] अपने आसनों से उठे। सभा के सब लोग द्रौपदी की ओर टकटकी लगा कर रह गये।

उसी समय बुद्धिमान् कृष्ण ने इधर-उधर देखते देखते साधारण आदमियों के बीच में ब्राह्मण वशधारी पाँच तेजस्वी पुरुषों को देखा। इससे उनका ध्यान सहसा उसी ओर खिंच गया। कुछ देर सोच कर उन्हों ने अपने बाल मित्र अर्जुन को अच्छी तरह पहचान लिया और बलदेव को भी उधर देखने के लिए इशारा किया। बलदेव ने भी कृष्ण के अनुमान को सच समझा। तब कृष्ण और बलदेव दोनों को विश्वास हो गया कि पाण्डव लोग लाक्षागृह से जलने से बच गए हैं।

परन्तु और राजकुमारों के प्राण तो द्रौपदी पर निछावर हो चुके थे। उन्हें किसी दूसरी तरफ ध्यान देने की फुरसत कहाँ। वे ईर्ष्या और दुराशा के कारण अपने-अपने होंठ काट रहे थे और चञ्चल चित्त से इधर उधर घूम कर एक दूसरे से निशाना

लिया। ऐसा करते देख जिन [illegible]धारी और पराक्रमी राजाओं से हजार प्रय[illegible] पर भी [illegible] न उठा था, उन्हें बड़ी लज्जा मालूम [illegible]। अर्जुन ने [illegible] को तान कर झट उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और [illegible] यन्त्र के छेद के बीच से पाँच बाण मार कर निशाना [illegible] पर गिरा दिया।

[illegible] हलचल मच गई। देवता लोग अर्जुन के ऊपर फूल बरसाने लगे। हजारों ब्राह्मण अपने मृगचर्म और उत्तरीय हिला हिला कर बड़ी खुशी प्रकट करने लगे। बाजे वालों ने तुरही बजाई और सूत मागधों ने मधुर कण्ठ से स्तुति-पाठ करना आरम्भ किया।

द्रौपदी ने अर्जुन की अतुल कान्ति को देख कर खुशी के साथ उनके गले में जयमाला पहना दी। राजा द्रुपद भी अर्जुन के अद्भुत बल और फुरतीलेपन से प्रसन्न हो कर कन्या-दान करने की तैयारी में लगे।

द्रुपद को इस ब्राह्मण कुमार के हाथों में कन्यादान देने के लिए तैयार देख कर आये हुए राजा लोगों को बड़ा क्रोध हो आया। वे एक दूसरे के मुह की तरफ देख कर कहने लगे—

"राजा द्रुपद ने हम लोगों का निरादर किया। हम लोगों का बड़ा अपमान हुआ। देवताओं के समान राजाओं में इन्होंने किसी को अपनी कन्या देने योग्य न समझा। ब्राह्मणों को

की ऐसी [illegible] आश्चर्य में आगए। उन्होंने कहा —

'हे [illegible]! तुम्हारा [illegible] चलाने में तुम्हारी योग्यता और [illegible] शरीर की मजबूती देख कर हम बड़े प्रसन्न [illegible]। [illegible] होता है कि तुम साक्षात धनुर्वेद हो। हमें कोई [illegible] गुरु इन्द्र या कुन्ती के पुत्र अर्जुन को छोड़कर दूसरा कोई भी सामना नहीं कर सकता।"

अर्जुन ने उत्तर दिया—

"हम न तो धनुर्वेद हैं, न इन्द्र किन्तु अस्त्र विद्या जानने वाले एक ब्राह्मण हैं। तुम को हराने के लिए लड़ाई के मैदान में आये हैं।"

इस बात के सुनते ही कर्ण ने ब्रह्मतेज की श्रेष्ठता स्वीकार की और युद्ध से पीछा छुड़ाया। इधर शल्य और भीम में घूँसों और ठोकरों के द्वारा और भी बेढब लड़ाई होने लगी। अन्त में भीम ने एक ऐसी उखाड़ मारी कि शल्य जमीन पर चारों खाने चित्त गिरे। इस से ब्राह्मण लोग मारे हँसी के लोट पोट हो गये। शल्य ने भी लज्जित हो कर हार मानी। यह देख कर बाकी राजा लोग डर गये। वे आपस में बात चीत करने लगे—

"ब्राह्मण कुमार कौन हैं? ये किस के पुत्र हैं और कहां के रहने वाले हैं? यह जानना जरूरी है।"

१०

साहित्य की महत्ता

ज्ञान राशि के संचित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह, रूपवती भिखारिनी की तरह, कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्रीसम्पन्नता, उसकी मान मर्यादा, उसके साहित्य पर ही अवलम्बित रहती है। जाति-विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके ऊँच-नीच भवों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसके ऐतिहासिक घटना-चक्रों और राजनैतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो

और कालान्तर में निर्जीव सा बने रह जाना चाहते तो हमें साहित्य का सृजन सदा करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा मौलिकता लाने के लिए सतत उत्पादन भी करते जाना चाहिए। पर दूषित [illegible] विकृत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण हो जाता है [illegible] विकृत साहित्य से मस्तिष्क [illegible] रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बल [illegible] शक्तिसम्पन्न होना अच्छे ही साहित्य पर अवलम्बित है। अतएव यह बात निर्भ्रान्त है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एक मात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की होड़ में अन्य जातियों की बराबरी करना है तो हमें श्रमपूर्वक, बड़े उत्साह से, सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिये और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या करके अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़ा रहना ही अच्छा समझते हों तो आज ही इस साहित्य सम्मेलन के आडम्बर का विसर्जन कर डालना चाहिये।

आंख उठाकर जरा और देशों तथा और जातियों की ओर तो देखिए। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहां की सामाजिक और राजकीय स्थितियां में कैसे-कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ही ने वहां समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है; शासन प्रबन्ध में बड़े-बड़े उथल पुथल कर डाले हैं; यहां तक कि अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है।

११
विषधर सर्प

सृष्टि में सख्यातीत पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग और पेड़ पौधे पाये जाते हैं। उनमें से किसी एक का भी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य की ससीम शक्ति के बाहर की बात है। विद्वानों ने पता लगाया है कि जिन नैसर्गिक नियमों के अनुसार मनुष्य अपना जीवन धारण करता है, अधिकांश उन्हीं नियमों के अनुसार अन्य प्राणी भी जीते और जीवन-चर्य्या चरितार्थ करते हैं। आचार्य्य वसु ने तो इस बात तक के निभ्रान्त प्रमाण दिये हैं कि जीव जन्तु ही नहीं, उद्भिज्ज तक में वही चेतन-शक्ति अपना काम कर रही है जो मनुष्यों, पशु पक्षियों और कीट पतङ्गों में विद्यमान रहती है। उस ज्ञानमय परमात्मा की

इस दृष्टि से किसी [illegible] जीव जन्तु के विषय में ज्ञान सम्पादन [illegible] करना लाभदायक है। ऐसे ज्ञान-सम्पादन [illegible] का काम है। तितलियों और रेशम के कीड़ों [illegible] करना इसका उदाहरण समझिए। पर इस [illegible] की प्राप्ति के लिए खोज और श्रम आव[illegible] बिना श्रम के कुछ नहीं मिलता। अगग्रास भी मुँह में [illegible] जाता। खेद है, हम लोग श्रम से बहुत डरते हैं। खोज से दूर भागते हैं। यदि हम किसी साधारण चिड़िया घर के आँगन में फुदकने वाली गौरैया का भी कुछ हाल जानना होता है तो झट हम नेचुरल हिस्ट्री के ढंग की कोई अँगरेजी पुस्तक ढूँढने दौड़ते हैं और उस की नकल करके समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों के लिए लेख तैयार करते हैं। मामूली कीड़े का हाल खुद देख भाल करके नहीं लिखते, अँगरेजी "सैक्डा" के बयान की कापी करके सुलेखक बन बैठने की ताक में रहते हैं।

भारत में अनेक प्रकार के सर्प पाए जाते हैं। पर आज तक किसी ने भी उन सब का ज्ञान प्राप्त करके कोई पुस्तक नहीं लिखी। परन्तु सात समुद्र पार रहने वाले अँगरेज, जो यहाँ कुछ ही समय के लिए आते हैं, साँपों को पालते, उनकी परीक्षा करते, उनकी जीवन-चर्य्या का ज्ञान प्राप्त करते और फिर बड़ी-बड़ी पुस्तकें और बड़े-बड़े लेख लिखते हैं। ऐसे ही

काले नागों में से एक जाति बहुत बड़ी होती है। उसे नागराज (King Cobra) कहना चाहिए। उसकी डाढ़ों में बड़ा ही तीव्र विष रहता है। यह साँप बहुत लम्बा होता है। बम्बई के अजायबघर में एक साँप है जिसकी लम्बाई १५ फुट ५ इञ्च है। ये साँप बिना छेड़े भी मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, विशेष करके इनकी मादी। जिस समय इस जाति की नागिन अण्डे रखती है उस समय वह जरा सी आहट पाने पर भी काटने दौड़ती है। उस समय उसकी हिंसक वृत्ति बहुत बढ़ जाती है। कुपित होने पर यह साँप जब तन कर खड़ा हो जाता है तब इसके शरीर के उत्थित अंश की ऊँचाई मनुष्य के कद के बराबर पहुँच जाती है। उस समय इसकी कोप-कराल फणा को देख और फुङ्कार को सुन कर अत्यन्त साहसी मनुष्य का भी हृदय दहल उठता है। इस जाति के साँप अपने ही भाई बन्धुओं को अपना भक्ष्य बनाते हैं। विषधर हो अथवा निर्विष सामने आ जाने पर किसी को नहीं छोड़ते। एक दफे एक नाग-राज ६ फुट लम्बा एक अजगर निगल गया था। इस प्रकार के साँप सिर्फ घने जङ्गलों में पाये जाते हैं।

साधारण जाति के काले साँप प्रचुरता से सर्वत्र ही पाये जाते हैं। इनमें भी कई उपभेद हैं। किसी के फन पर कुण्डला-कार घेरा सा होता है, जिसे गोपद (गोखुर) कहते हैं। किसी में यह घेरा कुछ लम्बा होता है और किसी में होता ही नहीं।

के फन के साथ सिद्ध होता [illegible] है सांप अपना शरीर की कुण्डली बना कर बैठ जाता [illegible] शरीर की कुण्डलियों का आपस में [illegible] होने के कारण अपूर्व ध्वनि निकलती [illegible]

[illegible] सिर में एक छोटी सी थैली रहती है। उसी में [illegible] रहता है। यह थैली आंख के पीछे मांस के भीतर [illegible] है। काटते समय दबाव पड़ने से थैली का मुँह खुल जाता है और विष निकल पड़ता है। यह विष एक तन्तुमय नाली से बह कर दांतों में पहुँचता है। ये दांत किसी किसी जाति के सांप के जबड़े के पीछे और किसी किसी के आगे रहते हैं। दांतों में छेद सा रहता है और काटते समय विष कटी हुई जगह में टपक पड़ता है।

सर्प विष का प्रभाव दूर करने के लिये आज तक अनेक ओषधियां तैयार हुई हैं। पर पूरी सफलता किसी से भी नहीं हुई। सर्प विष से ही डाक्टरों ने कुछ ओषधियां तैयार की हैं। पिचकारी से ये शरीर के भीतर पहुँचाई जाती हैं। पर जिस प्रकार के सर्प के विष से ये ओषधियां बनती हैं उसी प्रकार के सर्पदंश को ये लाभ पहुँचा सकती हैं, औरों को नहीं। सर्पदंश की सब से अच्छी दवा यह है कि सांप काटते ही उस जगह को तेज चाकू से काट दें। फिर उससे जितना खून निकल सके दबा कर निकाल दें। उस जगह को गरम लोहे से दाग भी दें,

१२

नेपोलियन बोनापार्ट

योरप के इतिहास में नेपोलियन एक अद्वितीय और प्रतिभाशाली महापुरुष हो गया है। अपनी वीरता, साहस और बुद्धिमत्ता से वह साधारण स्थिति से फ्रांस का सम्राट् हो गया और योरप के सारे देशों में उस ने अपनी धाक जमा ली। फ्रांस के छोटे से देश को उसने साम्राज्य में परिणत कर दिया और उसकी कीर्ति बढ़ा कर उसे योरप के देशों में अग्रगण्य बना दिया।

नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म कार्सिका नामक टापू में, जो इटली के दक्षिण में है, सन् १७६९ ई० में हुआ था। कार्सिका के निवासियों का जीवन विचित्र था। उनमें परस्पर इतना द्वेष था

यह गुण नेपोलियन ने उसी से सीखा था, क्योंकि जब वह फ्रांस का सम्राट् बना और समस्त यूरोप उसके हाथ आया, तब भी उसने [illegible] दिया।

नेपोलियन [illegible] फौजी शिक्षा प्राप्त करने के लिए फ्रांस भेजा गया, परन्तु वहाँ रईसों के लड़कों के साथ उसकी नहीं पटती थी। वह उनके अपमानसूचक शब्दों को सुन कर दुःखी होता था और अपने देश की दुर्दशा को देख कर खिन्न-हृदय होकर ईश्वर से उसकी मुक्ति के लिए प्रार्थना करता था। परन्तु पढ़ने लिखने में उसकी प्रवीणता को देख कर उसके अध्यापक और अन्य छात्र भी चकित हो जाते थे। इतिहास से उसे ऐसा प्रेम था कि उसने अल्पावस्था ही में ग्रीस और रोम के वीरों के जीवन-चरित्र पढ़ डाले थे। उसकी मानसिक शक्ति ऐसी प्रबल थी कि कठिन से कठिन विषय को भी वह शीघ्रता से समझ जाता था। अपने विद्यार्थी-जीवन में उसने अपना अधिकांश समय अध्ययन में ही व्यतीत किया और निबन्ध इत्यादि लिखने के लिये कई बार पारितोषिक भी पाया। प्रारम्भिक जीवन में नेपोलियन के विचार विचित्र थे। ईसाई धर्म में उसकी श्रद्धा अधिक नहीं थी। उसका उत्साह पूर्ण हृदय मनुष्य-जाति के दौर्बल्य और राष्ट्रों की उदासीनता को देख कर दुःखी होता था। उसे यह इच्छा होती थी कि मैं भी कार्य क्षेत्र में कूद कर मनुष्य जाति के हित-सम्पादन के

न मुक्त कण्ठ से प्रशंसा [illegible] समझना भूल होगी कि वह केवल [illegible]। व्यावहारिक कुशलता और दूरदर्शिता [illegible] में सिद्ध नहीं है जो उसने फ्रांस में [illegible]।

नेपोलियन के [illegible] नायक होने के पूर्व फ्रांस में एक महान् राष्ट्रीय [illegible] चुका था, जिसने देश की स्थिति ही बदल दी [illegible] और योरप के सारे देशों में हलचल मचा दी थी। इस राज्य विप्लव के बाद वह फ्रांस का अधिष्ठाता बना और शासन का कार्य उसने अपने हाथ में लिया। राष्ट्र विप्लव के समय फ्रांस में बड़े परिवर्तन हो गए थे। रईसों के प्राचीन अधिकार जो मध्यमिक काल से चले आते थे, छीन लिये गए थे। स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृ भाव ये ही राज्य क्रान्ति के मूल मन्त्र थे और इन्हीं की विजय के लिए फ्रांस के लोगों ने असह्य यातनाएँ सही थीं और अज्ञानता-वश अपने ही देश भाइयों पर अनेक अत्याचार किए थे। इस आपत्ति के समय बड़े बड़े भीषण दृश्य देखने में आए। हजारों निर्दोष स्त्री पुरुषों के प्राण गए और प्राचीन संस्थाएँ नष्ट हो गईं। प्रजा-तन्त्र राज्य स्थापित हो गया और जिन रईसों और विद्वानों ने इसका विरोध किया, उन्हें फाँसी का दण्ड दिया गया। ईसाई धर्म की अवहेलना और निन्दा की गई। नए मत प्रचलित किए गए और प्राचीन धर्मानुयायी पादरियों की सम्पत्ति छीन ली गई।

त्रास [illegible] था। [illegible] नहीं था। आर्थिक दशा हीन थी। [illegible] शक्तिहीन होगए थे। [illegible] कारण प्रत्येक नागरिक का [illegible] था। विदेशी व्यापारियों ने इस [illegible] सर्वग्रिता के कारण व्यापार बन्द कर दिया [illegible] बड़े का नाश हो चुका था। किसी विभाग [illegible] योग्यता, दक्षता और सचाई से काम नहीं होता था। [illegible] रहस्य षडयन्त्रों का रोकना, शान्ति विहीन राष्ट्रीय दलों के असन्ताप को दूर करना, सम्पत्ति हीन लुटे हुए पादरियों के हृदय में धधकती हुई आग को बुझाना—ये सब कठिन समस्याएँ फ्रांस के नए शासक के सम्मुख उपस्थित थीं।

नपोलियन ने शीघ्र ही उत्साह पूर्वक अपना कार्य आरम्भ किया। शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करने में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। कभी कभी तो वह रात दिन काम करने में लगा रहता था और अविरल परिश्रम करने पर भी नहीं थकता था। छोटी छोटी बातों को भी वह स्वयं देखता था, और राज्य का कोई काम ऐसा नहीं था, जो उसकी सम्मति बिना होता हो। उसने यह समझ लिया था कि फ्रांस में दृढ़ और संगठित शासन की आवश्यकता है। इसीलिए उसने पुलिस को विशेष अधिकार दिया, और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पहले की अपेक्षा बहुत कम कर दी। समाचार पत्रों

थी जब कि राष्ट्रीय संस्थाएँ चूर हो गई थीं और स्वतन्त्रता की पुकार मचाने वाले अपनी स्वार्थपरता से परतन्त्रता की जड़ पक्की कर रहे थे। असन्तुष्टों को सन्तुष्ट करना, निराशों को आशा दिलाना, जन-धन गौरव व स्वत्वों की रक्षा करना और उनकी उन्नति का साधन निकालना सरल काम नहीं था। नेपोलियन ने अपनी बुद्धिमत्ता से इस महा कठिन कार्य का सम्पादन किया और इसी कारण उसका नाम संसार के इतिहास में सदा अमर रहेगा।



जाता है, वह पेड़ वैसा ही अपनी डाल खड़े हैं, उनकी हरियाली वैसी ही है, बयार लगने पर उनके पत्ते वैसे ही धीरे धीरे हिलते हैं, चिड़िया वैसा ही बोल रही हैं, रात में चाँद वैसा ही निकला, धरती पर चाँदनी वैसी ही छिटकी, तारे वैसे ही निकले, सब कुछ वैसा ही है। जान पड़ता है देवबाला मरी नहीं। धरती सब वैसी ही है, पर देवबाला मर गई। धरती के लिये देवबाला का मरना जीना दोनों एक सा है। धरती क्या गाँव में चहल पहल वैसी ही है। हँसना, बोलना, गाना, बजाना, उठना, बैठना, खाना, पीना, आना, जाना सब वैसा ही है। देवबाला के मरने से कुछ घड़ी के लिए दो एक जन का कलेजा कुछ दुखा था, पर अब उनको देवबाला की सूरत तक नहीं है। वह भी देवबाला को भूल गये। हाँ! अब तक एक कलेजे में दुख की आग जल रही है। अब तक एक जन की आँखों में आँसू बहता है, वह देवबाला के लिये बावला बन रहा है। वह दूसरा कोई नहीं रमानाथ है। पीछे किरिया करम का झमेला हुआ, दूसरे काम काज का झंझट हुई। रमानाथ को ही यह सब कुछ सम्हालना पड़ा। धीरे धीरे उसका दुख भी घटने लगा, धीरे धीरे वह भी देवबाला को भूल रहा है। एक एक करके दिन जाने लगे। देवबाला को मरे कई दिन हो गये, पर देवनन्दन अब तक नहीं भूले हैं। अब तक वह लड़कपन की हँसती खेलती देवबाला, अब तक वह ब्याह के पहले की बिना

इसी बीच देवनन्दन ने सुना जैसे किसी ने कहा "हाँ होगा"। उन्होंने आँख उठा कर देखा, आकाश से एक जोत सामने उतरती चली आती है और उसी में से जैसे कोई कह रहा है, "हाँ होगा"। देवनन्दन फिर होकर उसको देखने लगा। उसी में फिर यह बात सुन पड़ी, क्या तुम मुझको जानते हो? मेरा नाम जतन है? मेरे बिना धरती का कोई काम नहीं चल सकता, मैं तुमको बतलाती हूँ। जतन करो, जतन करने से सब कुछ होगा। देवनन्दन ने बहुत विनती के साथ कहा, सब सच होगा, माँ? फिर यह बात सुनने में आई कि जतन करने वाले को कब तक की बात मुँह पर न लाना चाहिए। जब तक उस का काम न हो तब तक उसे जतन करते रहना चाहिए। देवनन्दन ने देखा, इतनी बातों के कहने के पीछे वह जोत फिर आँखों से ओझल हो गई। देवनन्दन जब तक जीते रहेंगे और किस किस ढंग से उन्होंने देस की बुरी चालों को दूर करने के लिए जतन किया, कैसे कैसे खोटी छुड़ा कर अपने देश भाइयों का भला करना चाहा, इन सब बातों को यहाँ उठाने का काम नहीं है। पर जब तक वे जीते रहे, उनका यह काम था। कुछ दिनों रमानाथ भी उसका साथी हो गया था।

बहुत दिन तक लोगों ने देवनन्दन को दूसरों की भलाई के लिए घूमते देखा था, पर पीछे उनको भी धरती छोड़नी पड़ी। जिस दिन उन्होंने धरती छोड़ी, उस दिन चारों ओर से लोगों को यह बात सुन पड़ी थी "क्या फिर कोई देवनन्दन जैसा माई का लाल न जन्मेगा?"

—["ठेठ हिन्दी का ठाठ" से]

मनुष्य की विद्या, बुद्धि और स्वभाव का पता उसकी बातचीत से लग जाता है, इसलिए उसे अपने विचार प्रकट करने के लिए बातचीत में बड़ी सावधानी रखना चाहिए। सम्भाषण में सावधानी की आवश्यकता इसलिए भी है कि बहुधा बात ही बात में रार बढ़ जाती है। यथार्थ में मनुष्य की बातचीत ही उसके कार्य की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किसी कवि ने कहा है—'कहैं कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बोलिबो न सीखो सब सीखो गयो धूल में।' जिसकी बातचीत में सभ्यता या शिष्टाचार का अभाव रहता है उससे लोग बातचीत करना नहीं चाहते।

सम्भाषण करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुरूप 'तुम', 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिए। इनमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थिति के लोगों के लिए या अधिक घनिष्ट परिचय वाले समवयस्क के लिए और 'श्रीमान्' का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महानुभावों के लिए किया जाय। बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़कर और किसी के लिए 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं। किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं' के लिए केवल सिर हिलाना असभ्यता है। उसके बदले "जी हाँ" या "जी नहीं" कहने की बड़ी आवश्यकता है। बातचीत

बातचीत में आत्म प्रशंसा को यथा सम्भव दूर रखना चाहिए। साथ ही बातचीत का ढङ्ग भी ऐसा न हो कि श्रोता को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बातचीत में विनोद रस का आनन्द आता है, परन्तु सदैव हँसी ठट्ठा करने की टेव कहने और सुनने वालों के लिए हानिकारक है। सम्भाषण में उपमा और रूपक का प्रयोग भी बड़ी सावधानी से किया जाय, क्योंकि इससे बहुधा अर्थ का अनर्थ हो जाने का डर रहता है। यदि वार्तालाप करते समय कतिपय छोटे छोटे पद्यों और कहावतों का उपयोग किया जाय तो इनसे बातचीत में सरलता और प्रामाणिकता आ जाती है। तथापि 'अति सर्वत्र बुरी होती है'।

यदि कोई दो-चार सज्जन इकट्ठे किसी विषय पर बातचीत कर रहे हों तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही बातचीत करने लगना अनुचित है। कभी कभी किसी मनुष्य को चुपचाप देखकर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह करते हैं। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह कोई मनोरञ्जक बात या विषय छेड़ कर उनकी इच्छा-पूर्ति करे।

किसी की असम्भव बातें सुन कर भी उसकी हाँ में हाँ मिलाना चापलूसी है और न्याय सङ्गत बातें मानकर भी उनका

कर के वर्णनात्मक अथवा विचारात्मक विषय पर सम्भाषण किया जाय। नवयुवकों में वेदान्त की चर्चा करना और वयो-वृद्ध लोगों से शृङ्गार रस की विशेषतायें बताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुए किसी स्त्री से (विशेषकर दूसरे घर की स्त्री से) बात-चीत करना अशिष्ट समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी विचारात्मक कार्य में लगा हो तो उसके पास ही ओर और से बात न करना चाहिए। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना उसके लिए हानिकारक है, और इससे उसके रोग की भयङ्करता का उल्लेख करना रोग से भी अधिक भयानक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धी की निन्दा की जा रही हो तो निन्दक को नम्रता-पूर्वक इस कार्य से विरत कर देना चाहिए। और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव निन्दक पर न पड़े तो किसी बहाने उसके पास से उठ कर चले जाना उचित है। इससे उसे अपनी मूर्खता और आपकी अप्रसन्नता का कुछ आभास हो जायगा। जो मनुष्य स्वयं अकारण दूसरे की निन्दा नहीं करता उसके सामने दूसरों को भी ऐसी निन्दा करने का साहस बहुधा नहीं होता।

किसी सभा-समाज या जमाव में अपने मित्र अथवा परि-चित व्यक्ति से ऐसी भाषा का अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न करना चाहिए, जिन्हें दूसरे न समझ सकें, अथवा जो उन्हें

मोह में पड़ कर, हिन्दी के 'ज' वाले शब्दों में 'ज' की अशुद्ध बुन्दी लगाते हैं और कदाचित् उसे अपनी उर्दूदानी का प्रमाण समझते हैं। पर यह उनकी भूल है। क्योंकि ऐसा उच्चारण अशुद्ध होने के कारण दोनों भाषा भाषियों द्वारा उपहासास्पद होता है। हमने उर्दू न जाननेवाले एक वकील महाशय को 'जायदाद', 'मजबूर', 'हज' और 'ताज' कहते सुना है। एक एक महाशय तो 'मुझे जल्दी घर जाना है' कह कर वकील साहब को मात कर देते हैं। यद्यपि हमने उपर्युक्त वकील साहब की शिष्टता के अनुरोध से उस समय उनकी भूल नहीं बताई, पर हमें उनकी यथार्थ 'उर्दूदानी' का पता चल गया। कई लोग भूल से हिन्दी के फ अक्षर को 'फ़' कहते हैं, जिसका उदाहरण उनके 'फ़ल', 'फ़ूल' और 'फ़न्दा' कहने में मिलता है।

शिष्ट भाषण में इन दोषों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े उस भाषा के ज, फ, क और ग का उच्चारण करने का किसी को साहस न करना चाहिए। क्योंकि इससे शिक्षित-समाज में, विशेषकर शिक्षित मुसलमानों में, हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गर्व करते हैं और दूसरी जातियों के अशुद्ध उच्चारण की हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिए सब से उत्तम उपाय तो यही है कि उनके उर्दू-शब्दों का उच्चारण हिन्दी के प्रचलित अक्षरों में किया जाय। हिन्दी लिपि

१५

हिन्दी में विराम-चिह्नों का दुरुपयोग

अँगरेजी भाषा की शिक्षा के कारण हिन्दी में उस के विराम चिन्हों का उपयोग होने लगा है। यह सुधार हिन्दी के सिवा, और दूसरी अन्य भाषाओं में भी हुआ है, परन्तु हमें उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं है। हम यहां इस विषय पर भी कुछ नहीं कहते कि इन विराम चिन्हों से हिन्दी को क्या लाभ अथवा हानि हुई है। इस लेख में हम केवल यही बताना चाहते हैं कि हिन्दी की अधिकांश पुस्तकों और सामयिक पत्रों में इन विराम चिन्हों का दुरुपयोग होता है।

विराम चिन्हों के विषय पर हिन्दी में किसी ने विशेष रूप

ने विलायती समाचार पत्रों और लेखकों के लेखों की जो प्रतिष्ठा सृष्टि की है उससे हम लोगों के चित्त में अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है—

"सण्डे पिक्टोरियल नाम का एक समाचार-पत्र विलायत से निकलता है। यह साप्ताहिक है। विन्स्टन चर्चिल साहब ने उसमें—महायुद्ध के चार अध्याय—नामक चार लेख लिखे, उन के लिए उन्हें १५ हजार रुपया दक्षिणा मिली ! जिन संख्याओं में उनके ये लेख निकले, उनमें प्रत्येक की २५ लाख कापियाँ बिकीं" !!! —सर०।

यदि इस विचार का कोई विलायत वाला लिखता, तो सम्भव था कि वह इसमें आश्चर्य का एक भी चिह्न न लगाता। सारांश यह है कि अनेक स्थानों में आश्चर्य चिह्न के शुद्ध पर्यायी विराम (,) और पूर्ण विराम (।) ही हैं पर लोग यथार्थ की अपेक्षा अद्भुत से अधिक रीझते हैं।

उलटे कामाओं (अवतरण चिन्हों) के उपयोग में भी बहुधा असावधानी और भूल होती रहती है। हिन्दी में इनके उपयोग की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अँगरेजी में है, क्योंकि पिछली भाषा में परोक्ष भाषण (Indiroct Speech) की अधिकता होने के कारण, प्रत्यक्ष भाषण को चिन्हों द्वारा सूचित किए बिना, उस का अर्थ समझने में कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में हम लोगों को इन चिन्हों का उपयोग एक

है। ऐसी अवस्था में आश्रित वाक्य को, स्पष्टता के लिए, अवतरण चिन्हों के बीच में रखना आवश्यक है। इसके पूर्व जो आश्रित वाक्य आया है वह यथा स्थान लिखा गया है, इसलिए उसे अवतरण चिन्हों में रखने की आवश्यकता नहीं हुई।

कभी कभी लेखक अवतरण चिन्हों का काम डैश (—) से लेते हैं जिसके कारण संयोजक "कि" का लोप हो जाता है, जैसे स्वामीजी ने हँस कर कहा—लोग कुछ दिनों के लिए गृहस्थ बनना छोड़ दें तो कुछ लाभ होने की सम्भावना है। —सर०।

डैश का यह उपयोग संवाद मय लेखों (और नाटकों) में तो सर्व-सम्मत है, परन्तु वर्णन के बीच में और विशेषकर प्रस्तावित क्रिया (कहना, पूछना आदि) के पश्चात् जो संवाद आते हैं उनमें विराम (कामा) ही उपयुक्त जान पड़ता है, जैसे, एक दिन उपमन्यु के परीक्षार्थ गुरुजी ने कहा, वत्स उपमन्यो! आज तुम वन में जाकर हमारी गायें चरा लाओ।—विद्यार्थी।

किसी किसी पुस्तक में एक के बदले तीन तीन चिन्ह लगाए जाते हैं, जैसे, वह बच्चा एक दाई को देते समय उसने कहा था,—"इसका पालन पोषण बहुत अच्छी तरह करना क्योंकि यह विलक्षण और अमानुषी शक्ति का आदमी होगा"। —ना० प्र० प०।

इस उदाहरण में 'करना" और "क्योंकि" के बीच में तो लेखक ने अर्द्ध विराम (;) छोड़ दिया, पर जहां अकेले एक

(च) अप्रचलित विदेशी शब्द में, जैसे, "रैड क्रास", 'बॉटी'। —इ०।

(छ) किसी विषय प्रचलित अथवा आक्षेपयोग्य शब्द या वाक्यांश में जैसे, बलमटेर", "प्रस्ताव","रायबहादुर", "नाटकों रजनान्त्र काव्य की ट्रेजेडियां'। —इ०।

(ज) उस शब्द के लिए जिसका धात्वर्थ भी बताना हो; जैसे, विभक्ति को "विभक्त" करके लिखना चाहिए, इन्द्र 'सिंहासन" पर बैठा। —इ०।

हम यहां यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि ऊपर लिखे नियम सर्वथा पूर्ण और निरपवाद नहीं हैं।

अर्द्धविराम (,) के उपयोग में बहुधा यह भूल होती है कि कई लेखक "इसलिए", "परन्तु", "और","क्योंकि' से आरम्भ होने वाले वाक्यों को सदा पूर्ण विराम के पश्चात् लिखते हैं; जैसे, "मछलियों पर इस परिवर्तन का और भी जल्दी और अधिक प्रभाव पड़ता है। और कीड़े मकोड़े आदि तो ऋतु-परिवर्तन के अनुसार और भी शीघ्र परिवर्तित हो जाते हैं" ।—ना० प्र० प०।

बङ्गाली भाषा भी इस पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है। क्योंकि फरांसीसी भाषा की तरह वह बड़ी मधुर है।—सर०। इ०।

ऊपर लिखे समुच्चय-बोधक शब्दों से केवल किसी विशेष अवस्था में वाक्यों का आरम्भ हो सकता है; सर्वत्र नहीं।

पश्चात् 'पर'' शब्द पढ कर एक बार वैयाकरण भी चक्कर मे आ जायगा। यह न रंगा कि क्या कभी वाक्य के पश्चात् भी विभक्ति अथवा सम्बन्ध सूचक अव्यय आता है। विस्तार-भय से हम यहा समानाधिकरण शब्दों और वाक्यों के विषय मे कुछ न लिख कर, केवल इसी वाक्य को शुद्ध करते हैं, जो इस प्रकार होना चाहिए—

'तब दस्तरख़ान (भोजन रखने के कपड़े) पर भोजन रखतीं'। अथवा दूसरे प्रकार से, "तब दस्तरख़ान पर (जिस कपड़े पर भोजन रखते है) भोजन रखतीं''। बिना इस प्रकार के परिवर्तन के वाक्य का अर्थ केवल अटकल ही से लगाया जायगा।

कोष्ठक के इस दुरुपयोग के अनेकों उदाहरण मिलते हैं, और ऐसा जान पड़ता है कि लोग इसे कलाई-घड़ी के समान शोभा की वस्तु समझते है, फिर चाहे वह ठीक समय बतलावे, चाहे गलत। इस दुरुपयोग का एक और उदाहरण यह है--

"इनके लिए सन् १८८४ मे एक नाइट-स्कूल (रात्रि की पाठशाला) खोला गया''।

इस उदाहरण मे दोनों समानाधिकरण शब्द एक ही लिङ्ग के होने चाहिए। "पाठशाला' के बदले "विद्यालय' लिखने से भूल शुद्ध हो सकती है।

कोष्ठक के समान डैश की भी दुर्गति है। यद्यपि डैश कभी

जो लगाये गए हैं—उन्हीं के आधार पर सम्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्त निश्चित किए गए हैं।—स० शा०।

प्रश्नवाचक चिह्न के सम्बन्ध में भी हिन्दी में भूलें मिलती हैं। भूलें बहुधा दो स्थानों में होती हैं। एक भूल "बताना", "कहना", "समझाना" और "लिखना" आदि क्रियाओं के विधि काल में होती है जिसे कुछ अर्द्ध शिक्षित परीक्षक भूल से प्रश्नवाचक समझ लेते हैं; जैसे, 'सिकन्दर ने भारतवर्ष पर जो चढ़ाई की थी, उसका संक्षिप्त वर्णन लिखो ?" दूसरी भूल उन प्रश्नवाचक शब्दों के कारण होती है जो अर्थ में केवल सम्बन्ध-वाचक हैं; जैसे, कई लोग यह नहीं जानते कि रबर कैसे बनता है ? ऐसे स्थानों में प्रश्नचिह्न के बदले पूर्ण विराम का प्रयोग करना चाहिए। कभी कभी आश्चर्य और प्रश्न के चिह्नों की आपस में मुठभेड़ हो जाती है; जैसे, वह मन में चिन्ता करने लगा कि अब मैं क्या करूँ ? इस वाक्य में प्रश्न के बदले आश्चर्य का चिह्न चाहिए।

हिन्दी में कोलन ( ) का स्वतन्त्र उपयोग नहीं होता; क्योंकि इसमें विसर्ग का भ्रम हो जाने की सम्भावना* है; पर डैश के

---

* इसी से हमने लेखक महाशय के इस लेख के कोलन डैशों (—) में से कोलन निकाल डाले हैं। उनके कथन को स्पष्ट करने के लिए केवल इसमें और नीचे के पैरे में दोनों रहने दिये हैं। स० सं०

१६

शुक की कथा

अनुवादक—श्रीयुत गदाधर सिंह

[इनका जन्म सन् १८२६ में काशी में हुआ था वैसे आप रहने वाले सचेंडा जिला कानपुर के हैं। आप राजपूत सेना में नौकर हैं। आप चीन की लड़ाई में शामिल हुए थे। आप आर्य समाज के पुराने सभासद हैं। आपने 'चीन में १३ मास' और 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' नामक दो पुस्तकें लिखी हैं। बंगला पुस्तक 'कादम्बरी' का हिन्दी में अनुवाद भी किया है।]

शूद्रक नामक एक परम बुद्धिमान् महाप्रतापी राजा अपने बाहुबल और पराक्रम से क्रमशः अशेष देश जीत कर वेत्रवती नदी के तीर पर विदिशा नामक नगरी में अकंटक राज्य करता

से जैसे सब लोग उसी की ओर देखने लगते हैं, उसी भाँति छड़ी का शब्द सुन कर सम्पूर्ण सभासदादि चाण्डाल-कन्या की ओर देखने लगे। राजा ने भी उसी ओर दृष्टिपात करके देखा कि एक बूढ़ा मनुष्य और पीछे पिंजरा हाथ में लिए एक बालक और उन दोनों के मध्य एक परम सुकुमार कन्या खड़ी है। कन्या का रूप-लावण्य ऐसा था कि किसी भाँति वह चाण्डाल-कुल की नहीं जान पड़ती थी। राजा उसकी अनुपम सुन्दरता और सुकुमारता को देख बड़े विस्मित हुए और एक-टक देखने लगे। वे अपने मन में तर्कना करने लगे कि विधाता ने यह सोच कर कि लोग इस कन्या को हीन जाति जान कर न छुएँगे इसको इतना रूप-लावण्य दिया है। यदि ऐसा न होता तो ऐसी कान्ति और रूप का होना भी अनहोना है। जो हो, चाण्डाल के घर में ऐसी रूपवती का सम्भव असम्भव और बड़े आश्चर्य का विषय है। राजा इस प्रकार कल्पना कर रहे थे कि उसी समय कन्या ने आदर विनयपूर्वक प्रणाम किया। बूढ़ा हाथ में पिंजरा लेकर सन्मुख खड़ा होकर विनीत वचन कहने लगा—'महाराज यह सुआ सकल शास्त्रवेत्ता, राजनीतिज्ञ सद्वक्ता चतुर, सकल कलानिधि महा कवि और रसी है। जो विद्या मनुष्यों को कठिनता से आती है, वह इसके कण्ठाग्र बसती है। इसका नाम वैशम्पायन है। संसार के समस्त राजाओं की अपेक्षा आप बड़े विद्वान और

के शाप से जड़ हो गए हैं। यहां बातचीत होते होते सभा भङ्ग-सूचक मध्याह्न काल का शंख बजा। स्नान का समय निकट जान राजा ने सभासदों आदि राजाओं को विनीत वचन कह कर विदा किया। चाण्डाल कन्या को भी विश्राम करने की आज्ञा दी और ताम्बूल वाहक से कहा कि तुम वैशम्पायन को महल में ले जाओ और स्नान-भोजन कराओ।

अनन्तर इसके आप भी सिंहासन से उठ कर राजभवन में गए और स्नान पूजा आदि करके शयनागार में शय्या पर पौढ़े और प्रतिहारी को वैशम्पायन के लाने की आज्ञा दी। प्रतिहारी वैशम्पायन को शयनागार में ले आया। राजा ने पूछा—हे वैशम्पायन, तुम्हारा जन्म किस प्रकार से और कौन से देश में हुआ? तुम कोई सिद्ध हो या कोई महापुरुष हो? तपबल से कलेवर बदले देश देश में भ्रमण करते हो या किसी देवता की आराधना कर तुम ने वर पाया है? पहले तुम कहां रहते थे? किस भांति चाण्डाल के हाथ पड़ कर पिंजरे में बन्द हुए? हम को इन सब बातों के सुनने की बड़ी इच्छा है। सो तुम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर हमारे चित्त को उद्वेग-रहित करो।

वैशम्पायन ने राजा की यह बात सुन कर कहा कि यदि आपको सुनने की बड़ी अभिलाषा है, तो सुनिए। भरतखण्ड के मध्य विन्ध्याचल के निकट विन्ध्य नामक एक जङ्गल है।

पक्षी मेरे अपने खोतों से सोते और प्रात काल आहार की खोज में गोल बाँध कर आकाश मार्ग में उड जाते। उस समय पक्षी शोभा जान पड़ती थी जैसे कोई हरी दूब सम्पन्न खेत उड़ा चला जाता है। वे सब दिग्दिगान्तरों में जाकर आहार एकत्र कर आप भी खाते और अपने बच्चों के लिए मुँह भर भर कर ले आते थे।

उस प्राचीन वृक्ष के खोखल में मेरे माता पिता भी रहते थे। दैव संयोग से मेरी माता गर्भवती हुई और मेरे जन्म के उपरान्त प्रसव की पीड़ा में मर गई। मेरे पिता बड़े बूढ़े थे और स्त्री के मरने से यद्यपि बड़े व्याकुल और शोकचित्त हुए, परन्तु प्रीति-वश शोक त्याग कर मेरे लालन पालन में दिन व्यतीत करने लगे। उनको चलने फिरने की कुछ शक्ति न थी, तब भी धीरे धीरे उस वृक्ष के नीचे उतर कर जो कुछ आहार-द्रव्य पृथ्वी पर गिरा हुआ मिलता, उसे ला कर मुझे खिलाते और बचा खुचा आप खाते थे। एक समय प्रात काल जब चन्द्रमा अस्त हो गया था, पक्षी मेरे चहचहा रहे थे, सूर्य्य के उदय से गगन मण्डल रक्त-वर्ण हो रहा था, आकाश स्थित अन्धकार रूपी धूल सूर्य्य की किरण रूपी झाड़ू से परिष्कृत हो गई थी और सप्त ऋषि लोग स्नानादि के निमित्त मानसरोवर के तट पर उतरे थे, उसी समय उस वृक्ष के रहने वाले सब पक्षी भी अपनी अपनी इच्छा के अनुसार देशदेशान्तर को चले। उन के

की उन्मत्तता में दोनों नग रक्त-वर्ण हो रहे थे, समस्त शरीर में रुधिर लगा हुआ था और संग में बहुत से बड़े बड़े कुत्ते थे। उन्हें देखने से यह जान पड़ता था, मानो कोई भयङ्कर असुर जङ्गल के पशुओं को पकड़ पकड़ कर खाता चला आता है। व्याधों को देख कर मैंने मन में विचार किया कि ये कैसे दुष्कर्मा और दुराचारी हैं। जङ्गल इनका घर है, धनुष धन, कुत्ते मित्र और बाघ सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के साथ वास और पशुओं की प्राण हत्या इनकी जीविका है। इन के हृदय में दया का नाम भी नहीं है और न अधर्म का कुछ भय है। सत्कर्म तो ये जानते ही नहीं कि किसे कहते हैं। ये लोग सदा धर्म-पथ को छोड़ निन्दित और घृणित बने रहते हैं। मैं इस प्रकार तर्कना कर रहा था कि वे मृगया की थकावट को दूर करने की इच्छा से उसी वृक्ष के नीचे आ बैठे जिस में मैं रहता था, और एक निकटवर्ती सरोवर से जल और मृणाल ला कर उन लोगों ने जलपान किया और फिर चल गये।

उस सेना में से एक वृद्ध को उस दिन कुछ आखेट नहीं मिला था। वह उनका संग छोड़ उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा। जब वे सब चले गये तो उसने अपनी लाल लाल आँखों से एक बेर वृक्ष को नीचे से ऊपर तक देखा। उस के देखने ही से उस में के बच्चों के प्राण उड़ गये। हाय! दुष्टों को कोई कर्म असाध्य नहीं है। जैसे निसेनी द्वारा अटारी पर चढ़ने

अपने कम्पित चरण और छोटे छोटे पंखों की सहायता से गिरता पड़ता चला जाता था और मन में यह सोचता जाता था कि अब तो कालग्रास से बचा, और जा कर एक निकटवर्ती तमाल वृक्ष की जड़ में छिपा। इतने में वह व्याध वृक्ष से उतर मर मर हुए पक्षिशावकों को एक लता से बांध जिधर वह सेना गई थी, उसी ओर चला गया।

ऊँचे से गिरने और भय के कारण मेरा शरीर थर थर कांपता था और पिपासा से कण्ठ सूखा जाता था। यह सोच कर कि अब वह व्याध दूर चला गया होगा, मैंने सिर निकाल कर चारों ओर देखा और इधर उधर धीरे धीरे चलने का उद्योग करने लगा। गिरते पड़ते चलते चलते शरीर मृत्तिका से लिप्त हो गया और सांस फूलने लगा। उस समय मैंने मन में सोचा कि चाहे किसी को कितना ही क्लेश क्यों न हो पर यह जीवन-आशा नहीं छोड़ता। मैंने अपने नेत्रों से देखा कि पिता स्वर्ग लोक को सिधारे, और मैं स्वतः इतने ऊँचे से विकलेन्द्रिय हो कर गिरा, पर अभी तक जीने की आशा कैसी मन में बनी है। हाय! हमारा सा निर्दय और कौन है? माता जन्मते ही मर गई, पिता पत्नी विरह परित्याग कर मेरे लालन पालन में नियुक्त थे और बुढ़ापे में भी मेरे लिए इतना क्लेश सहते थे। परन्तु मैं सब भूल गया। मुझ सरीखा कृतघ्न और दूसरा नहीं है और अपना सा निर्दयी और दुराचारी भी मैं किसी को नहीं

पड़ा है। ऐसा जान पड़ता है कि किसी शाल्मली के वृक्ष पर से गिरा है। इस का रोम रोम कांप रहा है और नेत्र बन्द हो रहे हैं। जान पड़ता है कि बड़ा प्यासा है। यदि थोड़ी देर जल न मिलेगा तो अवश्य मर जायगा। चलो हम इसे सरोवर पर ले चल कर जल पिलावें। सम्भव है कि बच जाय। यह कह कर उन्होंने मुझ को भाग में से उठा लिया। उनके स्पर्श मात्र से मेरा शरीर शीतल हो गया। अनन्तर इसके मुझे मानसरोवर ले जा कर मेरा मुँह खोल अपनी उङ्गली से जल पिलाया। जल पीने से पिपासाग्नि शांत हुई। फिर मुझे स्नान कराके नलिनी पत्र की शीतल छाया में बैठा दिया। आप भी स्नान कर सूर्य्य को अर्घ्य दान दे, गीला वस्त्र उतार, पुनीत नवीन वस्त्र धारण कर, मुझको ले तपोवन की ओर धीरे धीरे चले।

तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि यहां के वृक्ष सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और फल भार से भूमि स्पर्श करते थे। इलायची और लवंग की सुगन्ध चारों ओर छा रही थी और मधुप झङ्कार करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर भ्रमण कर रहे थे। अशोक, चम्पक, किंशुक, मल्लिका और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान स्थान पर सुन्दर रमणीय गृह बन गये थे, जिनमें सूर्य्य की किरण प्रवेश नहीं कर सकती थी। बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़ पढ़ कर होम कर रहे थे

भी कुसुमित हो रहे हैं। मानो सत्ययुग कलियुग के भय से भाग कर इसी तपोवन में आ छिपा है। वृक्षों की शाखा में मुनियों की छाला, कमण्डलु और माला लटक रही थी और नीचे बैठने के लिए वेदी बनी थी। मानो सब वृक्ष भी तपस्वी का वेष धारण करके तपस्या करते थे।

ऋषिकुमार मुझको उसी रक्ताशोक के नीचे रख, अपने पिता के चरण कमल की वन्दना कर, स्वतन्त्र हो एक आसन पर बैठे। सब ऋषिकुमारों ने मुझ को देख कर बड़ा आश्चर्य माना और हारीत से पूछा कि हे सखा! इस शुक के बच्चे को तुमने कहाँ पाया? उन्होंने कहा कि जब मैं स्नान करने को जाता था, तब इसको देखा कि अपने खोते से गिर कर पृथ्वी पर लेट रहा था। इसकी यह दशा देख कर मुझे दया आई। परन्तु जिस वृक्ष पर से यह गिरा था, उस पर का चढ़ना कठिन समझ मैं इसे अपने संग लेता आया। अब चाहिए कि हम सब यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करें।

हारीत की यह बात सुनकर जाबालि ऋषि ने मेरी ओर देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही मैंने अपने को कृतार्थ जाना। उन्होंने परिचित की भाँति बारम्बार मेरी ओर देख कर कहा कि यह अपने किये का फल भोग रहा है। महर्षि त्रिकालदर्शी थे। तपस्या के बल से उनको भूत, भविष्य और वर्तमान समान जान पड़ता था और ज्ञानदृष्टि द्वारा सम्पूर्ण संसार उनको

उत्तर दिया। मुनि सब ध्यानस्थित होकर और हाथ बाँध कर सन्ध्या-वन्दन करने लगे। कामधेनु के दुहे जाने का शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा। हरी कुशा अग्निहोत्र की वेदी पर बिछाई गई। तिमिर नाशक के भय से छिपा हुआ तिमिर प्रकट हुआ। सन्ध्या के क्षय होने के शोक से दुखित रात्रि अन्धकार रूपी मलिन वस्त्र धारण करके दृष्टिगोचर हुई। ग्रह रूपी चोर भी, जो सूर्य के प्रताप से छिपे थे, बाहर निकले। पूर्व दिशा में चन्द्रमा का थोड़ा थोड़ा प्रकाश होने लगा। इस से उसकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, मानो वह मुसकिरा रही हो। सुधाधर का पहले कला मात्र, फिर आधा और फिर क्रमशः समस्त मण्डल प्रकाशित हुआ और अन्धकार का नाश हुआ। कोई फूली और मन्द मन्द समीर के बहने से मृग आह्लादित हुए। जीव-जन्तु आनन्द मय, कुमुद गन्धमय और तपोवन प्रकाशमय हुआ।

हारीत भोजन आदि समाप्त करके मुझे ले ऋषिकुमारों के साथ पिता के समीप जा पहुँचे और देखा कि वे एक बेत के आसन पर बैठे हैं और जालपाद नामक शिष्य पंखा झल रहा है। वे पिता के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हुए और बोले कि हे पिता, हम लोगों को इस सुए के बच्चे का वृत्तान्त सुनने की बड़ी इच्छा है। यदि आप कृपा कर वर्णन करें तो हम सब बड़े कृतार्थ हों।

महर्षि ने ऋषिकुमारों की यह दशा देख कर कथा आरम्भ की जिसे सुन कर ऋषि कुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

या कहना हो तो चाहे हिन्दी में नेवाज कृत 'शकुन्तला' नाटक, हृदयराम कृत 'हनुमान' नाटक, या ब्रजवासी दास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि कई सौ वर्ष पहले के बने हुए कई नाटक गिनाए हैं। पर वास्तव में नाट्यकला की दृष्टि से वे नाटक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन रचनाओं में नाटक के नियम का पालन नहीं किया गया और वे काव्य ही काव्य हैं। हां, 'प्रभावती' और 'आनन्द रघुनन्दन' आदि कुछ नाटक अवश्य ऐसे हैं जो किसी प्रकार नाटक की सीमा में आ सकते हैं। कहते हैं कि हिन्दी का पहला नाटक बाबू हरिश्चन्द्र के पिता श्रीयुक्त बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरधर दास कृत 'नहुष' नाटक माना जाना चाहिए। पर वह भी साधारण बोल चाल की हिन्दी में नहीं, बल्कि ब्रज भाषा में है। इसके उपरान्त लक्ष्मण सिंह ने शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया था। यद्यपि यह नाटक भाषा आदि के विचार से बहुत अच्छा है, किन्तु मौलिक नाटक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह कालि दास कृत शकुन्तला नाटक का अनुवाद है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने तो मानो नाटक रचना से ही आधुनिक हिन्दी को जन्म दिया था। उन्होंने लगभग बीस नाटक लिखे थे, जिन में से अधिकांश अनुवाद नहीं तो छायानुवाद अवश्य थे, तो भी उनके कई नाटक बहुत अच्छे हैं और अब भी अनेक स्थानों पर खेले जाते हैं। लाला श्रीनिवास दास कृत रणधीर

निकले। इधर कुछ दिनों में इन अनुवादों की संख्या और भी बढ़ गई है जिन में से विशेष उल्लेख योग्य बंगला के सुप्रसिद्ध नाटककार श्रीयुत द्विजेन्द्र लाल राय तथा गिरीश घोष के नाटकों के अनुवाद हैं। राय महाशय के प्राय सभी नाटकों के सुन्दर अनुवाद बम्बई के हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से प्रकाशित हुए हैं। पर इधर दस-बीस वर्षों के अन्दर हिन्दी में मौलिक नाटक प्राय बने ही नहीं। इधर कुछ दिनों से काशी के श्रीयुत बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद' ने साहित्य के इस अङ्ग की पूर्ति की ओर ध्यान दिया है और उनको मौलिक नाटक लिखने में अच्छी सफलता भी हुई है। उनके लिखे हुए नाटकों में से अजात शत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ और विशाख आदि नाटक बहुत अच्छे हैं। आज कल कुछ धनवानों की कृपा से हिन्दी के लेखकों को अनेक प्रकार के पुरस्कार आदि मिलने लगे हैं। इस से आशा होती है कि शीघ्र ही हिन्दी में मौलिक रचना का आरंभ हो जायगा और साहित्य के अन्यान्य अङ्गों के साथ ही साथ इस अङ्ग की भी शीघ्र ही और अच्छी पूर्ति होगी।

जहाँ नाटकों का ही अभाव हो, वहाँ नाटक मण्डलियों और रङ्गशालाओं के अभाव का क्या पूछना है। बँगला, मराठी और गुजराती भाषा भाषियों ने बहुत दिनों से अपनी अपनी भाषा में अच्छे अच्छे मौलिक नाटकों की रचना आरम्भ कर रक्खी है

कानपुर के लोगों ने भी अपने अपने यहाँ "रणधीर प्रेम मोहिनी" और "सत्य हरिश्चन्द्र" का अभिनय किया था। इसके उपरान्त हिन्दी में अच्छे नाटक न बनने के कारण रंगशालाओं में हिन्दी का प्रवेश न हो सका और हिन्दी भाषा भाषी प्रायः पारसी थियेटरों के उर्दू नाटक देख कर ही सन्तुष्ट रहने लगे। कदाचित् यहां यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि बंगला मराठी या गुजराती आदि के नाटकों को देखते हुए पारसी थियेटरों के उर्दू नाटक कितने अधिक कुरुचि पूर्ण और निकृष्ट होते हैं। पर फिर भी हिन्दी भाषा भाषी उन्हीं नाटकों के अभिनय देखकर अपने आप को धन्य माना करते थे। इधर पांच सात वर्षों से पारसी कम्पनियों के थियेटरों में भी हिन्दी का प्रवेश हो चला है और दिन पर दिन उनमें खेले जाने वाले हिन्दी नाटकों की संख्या बढ़ती जाती है। अब तो कुछ ऐसी व्यवसायी मण्डलियां भी तैयार हो गई हैं जो बहुधा केवल हिन्दी के ही नाटक खेला करती है। पारसी कम्पनियों में तो अब कदाचित् ही कोई ऐसी हो जो दो चार हिन्दी नाटकों का अभिनय न करती हो। इस सम्बन्ध में दिल्ली के पण्डित नारायण प्रसाद बेताब का उद्योग परम प्रशंसनीय है, जिन्होंने पहले पहल 'महाभारत' नाटक की रचना करके और एक पारसी कम्पनी की रंगशाला में उस का अभिनय कराके लोगों का ध्यान कुरुचिपूर्ण नाटकों की ओर से हटाया और

१८

सभ्यता का विकास

ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइए, इसका अन्वेषण करते जाइए, इसकी छान बीन करते जाइए, उतनी ही नई नई शृङ्खलाएँ विचित्रता की मिलती जायँगी। कहा एक छोटा सा बीज और कहा उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष; कहाँ एक बिन्दुमात्र पदार्थ और कहाँ उस से उत्पन्न मनुष्य! दोनों में कितना अन्तर और फिर दोनों में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध! जरा सोचिए तो सही, एक छोटे से बीज के गर्भ में क्या क्या भरा हुआ है। उस नाम मात्र के पदार्थ में एक बड़े से बड़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है जो

हैं। इन्हीं सब बातों की जाँच विकासवाद का विषय है। यह शास्त्र हमको इस बात की छान बीन में प्रवृत्त करता है और बतलाता है कि कैसे संसार की सब बातों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में अभिव्यक्ति हुई, कैसे क्रम क्रम से उन की उन्नति हुई और किस प्रकार उनकी सफलता बढ़ती गई। जैसे संसार की भूतात्मक अथवा जीवात्मक उत्पत्ति के सम्बन्ध में विकास-वाद के निश्चित नियम पूर्ण रूप से घटते हैं वैसे ही वे मनुष्य के सामाजिक जीवन के उन्नति क्रम आदि को भी अपने अधीन रखते हैं। यदि हम सामाजिक जीवन के इतिहास पर ध्यान देते हैं तो हमें विदित होता है कि पहले मनुष्य असभ्य या जंगली अवस्था में थे। वे झुण्डों में घूमा करते थे और उनके जीवन का एक मात्र उद्देश उदर की पूर्ति था, जिसका साधन वे जानवरों के शिकार से करते थे। क्रमशः शिकार में पकड़े हुए जानवरों की संख्या आवश्यकता से अधिक होने के कारण उनको बाँध रखना पड़ा। इस का लाभ उन्हें भूख लगने पर स्पष्ट विदित हो गया और यहीं से मानों उनके पशु पालन-विधान का बीजारोपण हुआ। धीरे धीरे वे पशु-पालन के लाभों को समझने लगे और उनके चारे आदि के आयोजन में प्रवृत्त हुए। साथ ही पशुओं को साथ लिये लिये घूमने में उन्हें कष्ट दिखलाई पड़ने लगे और वे एक नियत स्थान

होता गया। जहाँ पहले असभ्यता या जंगलीपन ही में मनुष्य सन्तुष्ट रहते थे तब उन्हें सभ्यतापूर्वक रहना पसन्द आने लगा। सभ्यता अथवा सामाजिक जीवन में उस स्थिति का नाम है जब मनुष्य को अपने सुख और चैन के साथ साथ दूसरे के स्वत्वों और अधिकारों का भी ज्ञान हो जाता है। आदर्श सभ्यता वह है जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धान्त हो जाय कि "जितना किसी काम के करने का अधिकार मुझे है उतना ही दूसरे का भी है" और उसे इस सिद्धान्त पर दृढ़ रखने के लिए किसी बाहरी अंकुश की आवश्यकता न रह जाय। यह भाव जिस जाति में जितना ही अधिक पाया जाता है उतनी ही अधिक वह जाति सभ्य समझी जाता है। इस अवस्था की प्राप्ति बिना मस्तिष्क के विकास के नहीं हो सकती अथवा यह कहना चाहिए कि सभ्यता की उन्नति और मस्तिष्क की उन्नति साथ ही साथ होती है। एक दूसरे का अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध है। एक का दूसरे के बिना आगे बढ़ जाना या पीछे पड़ जाना असम्भव है। दोनों साथ साथ चलते हैं। मस्तिष्क के विकास में साहित्य का स्थान बड़े महत्त्व का है।



आवाज [illegible] आवाज बार बार आने लगी। परन्तु आखिर [illegible] कुछ दिखलाई नहीं देता था। सब के सब जिधर [illegible] रही थी उधर ही दौड़े। इनमें से एक [illegible] था पहले पहुँच गया। उसका [illegible] हे सज्जन, मेरा प्यारा लाडला यह [illegible] में डूब रहा है और मुझ से [illegible] नदी में कूदने नहीं देते, [illegible] और जाने दो।' 'जाने कैसे दें, यह तो नदी के मझधार में पड़कर चट्टानों से टक्कर खा कर [illegible] क्षण में रसातल को चला जायगी, जाने कैसे दें?' यह वाक्य उनमें से एक आदमी के थे जो उसको पकड़े हुए थे।

१८ वर्ष के जवान ने तुरन्त अपना कोट उतार दिया और किनारे की तरफ जाकर [illegible] चट्टानों और पानी के भँवरों पर डाली। फिर डूबते हुए बालक के वस्त्रों को देख कर वह उसकी तरफ कूदा।

"हे भगवन्, यह मेरे बच्चे को अवश्य बचाएगा। हा! वह देखो मेरा प्यारा बच्चा अब डूबा। वह डूबा, डूबा, हा!" सब लोग नदी के किनारे की चट्टान पर आकर देखने लगे। अब तक तो लोगों को बच्चे की चिन्ता थी, अब उस नौजवान की भी फिक्र पड़ी। कभी तो मालूम होता कि वह भँवर में पड़ गया, कभी चट्टानों के पास से ऐसा निकल जाता मानो भगवान् ही उसकी

पहली कथा पाश्चात्य देश के एक महानुभाव के बाल्यावस्था की है, दूसरी पूर्वीय देश के। पाश्चात्य देशों में बल, पराक्रम, आत्मविश्वासादि गुणों का प्रादुर्भाव अधिक होता है। इन देशों में आत्म त्याग, परोपकार और सेवाभाव अधिक होता है। महापुरुषों की जीवनी उनके देश के गुणों का दर्पण है।

बड़े आदमियों के जीवन में लोग बहुधा यही देखा करते हैं कि उन्होंने किन संस्थाओं को स्थापित किया, किस प्रकार से व्याख्यान दिए अथवा ग्रन्थ लिखे, कौन कौन से बड़े काम किए। परन्तु उनके जीवन में केवल वे ही कार्य उतने शिक्षाप्रद नहीं होते जो वे प्रकट रूप में संसार के सम्मुख करते हैं जितने वे काम जो वे घर के अन्दर अपने नित्यप्रति के व्यवहार में करते हैं अथवा जो वे बाल्यावस्था में अनायास कर बैठते हैं। वाशिङ्गटन और रानडे की जो कथाएँ ऊपर दी गई हैं उन से हमें उनके अन्य देशोपकारी कार्यों की अपेक्षा अधिक शिक्षा मिलती है। अमरिका की काङ्ग्रेस का वाशिङ्गटन की नाईं प्रत्येक मनुष्य सभापति नहीं हो सकता, न रानडे की नाईं हाइकोर्ट का जज अथवा अनेक संस्थाओं का प्रवर्त्तक हो सकता है। परन्तु यह प्रत्येक साहसी आदमी के लिये सम्भव है कि वह डूबते हुये को बचा ले। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य संसार के पदार्थों में से, जो ईश्वर ने उसको प्रदान किये हैं, अपने हिस्से में से भी दूसरों को दे सकता है, जैसा कि रानडे ने

२०

नेता के कुछ गुण

लेखक— श्रीयुत माधव राव सप्रे, बी० ए०

[श्रीयुत माधवराव जी महाराष्ट्र सज्जन थे पर आपने राष्ट्र भाषा हिन्दी को अपनाया था। आपका जन्म १९ जून सन् १८७१ को हुआ था। आपने नागपुर से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'हिन्दी केसरी', का सम्पादन किया और लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक के मराठी ग्रन्थ, "गीतारहस्य," का हिन्दी में अनुवाद किया। आप पन्द्रहवें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी हुये थे। इन के कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं—आत्मविद्या दासबोध भारतीय युद्ध जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति के उपाय, महाभारत मीमांसा। इनकी मृत्यु २३ अप्रिल १९२६ ई० को हुई।]

समुद्रमे अपनी जीवन नौका का दूसन उतराने दे। इस प्रकार नेताओं के गुणों के सम्बन्ध में अनेक मत दीख पडते हैं। यदि इस विषय का वर्तमान साहित्य देखा जावे, तो मालूम होगा कि ... नेताओं ने भी अपने विचार लेखों और ... द्वारा प्रकट किये हैं। कुछ दिन पहले लाला लाज- ... पतजी ने इसी विषय पर एक बहुत अच्छा लेख प्रकाशित किया था। खेद है कि वह लेख इस समय मेरे पास नहीं है। हमारे देश का प्राचीन साहित्य तो इस विषय की चर्चा से भरा पड़ा है। महाभारत में नेताओं के गुणों का वर्णन अनेक स्थानों में किया गया है।

इस समय, इस विषय पर, मैं न तो अपने विचार प्रकट करूँगा और न किसी वर्तमान नेता के। "दासबोध" नामक सुविख्यात ग्रंथ में श्री समर्थ रामदास स्वामी ने अपने मार्मिक विचार प्रकट किये हैं। श्रीसमर्थ मेरे परात्पर गुरु और नेता हैं। अतएव उन्हीं के विचारों के आधार पर मैं इस लेख में संक्षिप्त रीति से यह बतलाने का प्रयत्न करूँगा कि नेता में कौन कौन से गुण होने चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भारी कर्मवीर नेता हैं। उन्होंने स्वयं अपने विषय में कहा है —

> न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
> नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

समुद्रमें अपनी जीवन नौका का तूफान उतराने दे। इस प्रकार नेताओं के गुण, के सम्बन्ध में अनेक मत दीख पड़ते हैं। यदि इस विषय का … साहित्य देखा जावे, तो मालूम होगा कि … नेताओं ने भी अपने विचार लेखों और … द्वारा प्रकट किये हैं। कुछ दिन पहले लाला लाज- … ने इसी विषय पर एक बहुत अच्छा लेख प्रकाशित किया था। खेद है कि वह लेख इस समय मेरे पास नहीं है। हमारे देश का प्राचीन साहित्य तो इस विषय की चर्चा से भरा पड़ा है। महाभारत में नेताओं के गुणों का वर्णन अनेक स्थानों में किया गया है।

इस समय, इस विषय पर, मैं न तो अपने विचार प्रकट करूँगा और न किसी वर्तमान नेता के। "दासबोध" नामक सुविख्यात ग्रंथ में श्री समर्थ रामदास स्वामी ने अपने मार्मिक विचार प्रकट किये हैं। श्रीसमर्थ मेरे परात्पर गुरु और नेता हैं, अतएव उन्हीं के विचारों के आधार पर मैं इस लेख में संक्षिप्त रीति से यह बतलाने का प्रयत्न करूँगा कि नेता में कौन कौन से गुण होने चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भारी कर्मवीर नेता हैं। उन्होंने स्वयं अपने विषय में कहा है —

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

पर भी, देश का घात कभी न करनेवाला कौन है, इत्यादि। इन बातों का पता लगाकर फिर उस ग्राम में प्रवेश करना चाहिए। लोगों के असली हृदय का ज्ञान होने पर भी, यह भेद किसी को न बतला कर, सबका सम्मान करना चाहिए और अवसर आने पर बुद्धिमान लोगों को सज्जनता के द्वारा वश कर सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। दुर्जन को दूर करने में कोई लाभ नहीं—उसे केवल पहिचान रखना चाहिए, और उस पर कपट भाव न रखकर उसका उपकार तथा सुधार करने में कभी न चूकना चाहिए।

प्रयत्नवाद और परिश्रमशीलता की आवश्यकता तो संसार में सब के लिए है, परन्तु नेताओं के लिए अत्यन्त अधिक है। नेता के, अर्थात् बड़ी बड़ी जिम्मेदारी के कामों के सूत्रधार के, थोड़े से आलस्य से हजारों लाखों मनुष्यों की अपार हानि हो सकती है। श्रीसमर्थ ने बतलाया है कि दैव का भरोसा करते हुए और उद्योग का त्याग कर हाथ पर हाथ धरे कभी न बैठे रहना चाहिए। उनका मत है कि राजा अथवा रङ्क होना, उत्तम अथवा अधम होना और सुखी अथवा दुःखी होना प्रारब्ध का परिणाम नहीं, किन्तु अपने गुणों और कार्यों का परिणाम है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रयत्न और परिश्रम किये बिना तथा कष्ट सहे बिना कोई फल नहीं मिलता, कष्ट के बिना राज्य नहीं हो सकता। उनका

शत्रु पर सहसा रुपये बरसने लगते हैं, क्योंकि दरिद्र से दरिद्र लोगों को भी मालूम रहता है कि ऐसे सज्जन स्वयं अपने लिये कुछ नहीं करते —दूसरों का उपकार ही करते हैं। ध्यान रहे कि जो मनुष्य निरपृह नहीं होगा उसे दूसरों के दुःख में दुःख और सुख में सुख नहीं होगा।

परोपकार के लिये सदैव तत्पर रहना सात्विकता का सूचक है। यही नेता का सर्वप्रधान गुण है। इस विषय का भेदभाव रखना अनुचित है कि अमुक का उपकार और अमुक का काम करना चाहिए। दूसरों को और विशेषतः दुर्जनों को भी आत्मवत् मानने पर, और अवसर पड़ने पर उनका उपकार करने से, आत्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास होता है। दूसरे की विपत्ति के समय किसी भय अथवा असावधानी से मुँह छिपाना नेताओं का काम नहीं है। यदि नेता किसी की विपत्ति में सहायता करने दौड़ेगा, तो पचासों आदमी भी उसकी सहायता करने के लिये दौड़ आवेंगे और उस आपत्ति ग्रसित मनुष्य का दुःख भार हलका हो जावेगा। इस तरह के कृत्यों से जन-समुदाय के सामने मनुष्यता का उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित होगा और भ्रातृभाव का यथेष्ट प्रसार होगा।

स्वामी रामदास ने नेताओं में उत्कटता का होना परम आवश्यक बतलाया है। उत्कटता किसी कार्य में पूर्ण प्रवीण होने

स्वधर्म, स्वदेश और स्वाधीनता के हित के लिये प्रयत्न करने वाले हमारे प्राचीन नेता का यही स्वरूप था।

स्मरण रहे कि नेता के उक्त सब आवश्यक गुणों में आध्यात्मिकता का प्रधान सूत्र है। ये गुण जैसे सांसारिक मार्ग में, वैसे ही पारमार्थिक कामों में भी उपयोगी हैं। नेता चाहे समाज का हो, धर्म का हो, राजनीति का हो या व्यापार-व्यवसाय का हो, परन्तु जब तक उसमें आध्यात्मिकता के आधार पर—ईश्वर के अधिष्ठान पर—उक्त गुणों का विकास न होगा, तबतक उसका आन्दोलन सफल न होगा। माना कि आन्दोलन में शक्ति है, रामदास स्वामी भी इस तत्व का समर्थन करते हैं, परन्तु उनका कथन स्पष्ट है —

"जो कोई आन्दोलन करेगा उसमें शक्ति है, परन्तु उसमें ईश्वर का अधिष्ठान होना चाहिए"।

तात्पर्य यह है कि हमारे नेता अपने प्रत्येक कार्य और आन्दोलन में "ईश्वर के अधिष्ठान" का अनुभव करें। यही आध्यात्मिकता नेता का प्रधान और सर्वश्रेष्ठ गुण है।

  

करवीर तक का सारा प्रान्त और कोंकण का कुछ भाग जीत लिया था। यद्यपि इस प्रकार वे राज्य सम्पादन के कार्य में लगे थे, तो भी सन्त समागम की उन्हें विशेष रुचि थी। बालपन से ही स्याद् और सन्तजनों के विषय में पूज्यभाव होने के कारण ये साधु समागम के लिए सदा उत्कण्ठित रहते थे। ये अपना राज काज करते हुए भी चिंचवड़ देहु, आलेन्दी आदि प्रसिद्ध स्थानों में साधु जनों के दर्शनों को बार बार जाया करते थे और उन का उपदेश श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से सुनते थे। जहाँ जहाँ हरि भजन या कीर्तन होता था वहाँ वहाँ ये अवश्य जाते थे। उनकी माता जीजाबाई ने उन्हें बचपन से ही अपने सनातन धर्म के शास्त्र, धर्म, पुराण और वेदान्त आदि के गम्भीर तत्त्व और सिद्धान्त तथा शिक्षादायक कथाओं की शिक्षा दिलाई थी। इस लिए अपनी माता की शिक्षा और साधु-समागम के कारण उनके मन में अपने जीवन की सार्थकता के विषय में अनेक उच्च विचार भर गए थे। वे सदा इस बात का चिन्तन करते रहते थे कि जीवन की सार्थकता उत्तम रीति से कैसे की जाय। उन्होंने एक बार सुप्रसिद्ध साधु तुकाराम बाबा से मन्त्रोपदेश की प्रार्थना की थी, पर उन्होंने शिवाजी को श्रीरामदास स्वामी की शरण में जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार मन की मुमुक्षु अवस्था में जब शिवाजी ने श्रीसमर्थ की साधु कीर्ति सुनी, तब उन्हें उनके दर्शन की बहुत अभिलाषा हुई।

तुम्हारे बतलाये हुए मार्ग को स्वीकार करो। श्रीरामचन्द्र जी कृपा करेंगे, तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा, तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे। इस विषय में सन्देह बिलकुल मत करना।

समर्थ का पत्र पढ़ कर शिवाजी के धार्मिक और निष्ठायुक्त अन्तःकरण में श्री रामदास स्वामी के दर्शन की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गई। तब वे अपने साथ कुछ आदमी लेकर समर्थ के दर्शन को चाफल गये। परन्तु समर्थ का दर्शन न हुआ क्योंकि वे एक स्थान में न रह कर चाफल के आस पास कृष्णा नदी के किनारे पहाड़ दरी और खाड़ियों में विचरते रहते थे। महीपति ने अपने "सन्त विजय" में लिखा है कि इस प्रकार शिवाजी महाराज को कई बार निराश होना पड़ा, तो भी उन्होंने यत्न करना न छोड़ा। अन्त में एक दिन वे यह निश्चय कर के घर से निकले कि जब तक समर्थ का दर्शन न होगा और उनका प्रसाद न मिलेगा, तब तक भोजन न करूँगा। इस तरह दृढ निश्चय कर के समर्थ का पता लगाते हुए चाफल के जंगलों में भटकते भटकते जब शिवाजी बहुत विह्वल और श्रान्त हो गये, तब समर्थ के शिष्य द्वारा उन्हें पता लगा कि समर्थ खडी के बाग में है। शिवाजी ने वहाँ जाकर दर्शन किया। दोनों की प्रेम पूर्वक वार्ता हुई। शकाब्द १५७१ वैशाख शुक्ल गुरुवार के दिन समर्थ ने शिवाजी को मन्त्रोपदेश दिया और

[illegible] समय में ही उनकी [illegible] आवश्यकता है। पूर्व समय में [illegible] भी [illegible] (द्वितीय) का [illegible] कर लिया था। उस समय शिवाजी ने [illegible] नीति, न्याय और धर्म का [illegible] और उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। राजा [illegible] राज्य वापस कर दिया था। उन्होंने [illegible] का राजधर्म का उपदेश दिया। शिवा, तुम वैरागियों का राज्य का क्या करोगे? कदाचित् इसने स्वीकार किया [illegible] (मन्त्री) की तरह रहोगे। [illegible] और राज्य हमारे समान [illegible] यह उपदेश सुनते ही शिवाजी का [illegible] हो गया।

अब [illegible] बिना [illegible] नहीं है। अब [illegible] समय में [illegible]—अब [illegible] होंगे। [illegible] का [illegible] करेगा। समय [illegible] की। उसी समय में शिवाजी महाराज ने [illegible] का [illegible] इतिहास में प्रसिद्ध हो है। [illegible] किया करता रहे व सब

जीवों का पालन और कौन कर सकता है? शिवाजी महाराज अपने मन में समझ गए, और बोले—मुझ पामर से कुछ नहीं हो सकता। इस दास को क्षमा कीजिए! समर्थ ने कहा—मैं क्षमा करने के लिए ही इस समय आया हूँ। परन्तु इतना बता देना आवश्यक है कि भैया, तुम उस सरकार (श्रीराम) के बड़े नौकर हो। तुम्हारे हाथ से वह औरों को देता है, इतनी बात से तुम्हें इस प्रकार का अभिमान कभी न करना चाहिए। यह सुन कर शिवाजी महाराज को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने समर्थ के चरणों पर गिर बार बार क्षमा माँगी।

एक दिन सज्जनगढ में भोजन के बाद समर्थ शिष्य-मण्डली के प्रश्नों का उत्तर देते हुए आसन पर बैठे थे। इतने में सहज ही उन्हें अपने शरीर पर एक चट्टा उठा हुआ देख पड़ा। उसे देख कर समर्थ को स्मरण हुआ कि हमारी माता ने हमारे लिए देवी जी को सोने के पुष्प अर्पण करने का संकल्प किया था, वह संकल्प पूरा नहीं हुआ। अतएव प्रतापगढ को, जहाँ शिवाजी ने देवी की स्थापना की थी, समर्थ स्वर्ण पुष्प अर्पण करने को गए। वहाँ समर्थ ने देवी जी की जो स्तुति की उस में उनके आत्म-चरित्र का भी कुछ उल्लेख है। अन्तिम चार पद्यों में शिवाजी के सम्बन्ध में जो प्रार्थना की है, वह ध्यान में रखने योग्य है। उसका भावार्थ यह है—हे माता, मेरी सिर्फ एक प्रार्थना है। यदि वरदान देना है, तो यही

२२

विलायती समाचार-पत्रों का इतिहास

लेखक—श्रीयुत प्यारेलाल मिश्र, बारिस्टर एट ला

[आप छिन्दवाड़ा में बैरिस्टरी करते थे। कुछ वर्ष हुए आपका देहान्त हो गया। आपकी शैली बड़ी ही सरल और स्वाभाविक है। आप छोटे छोटे वाक्य लिखते हैं। श्री० महावीर प्रसाद द्विवेदी आपकी लेखन शैली की बहुत प्रशंसा किया करते हैं।]

टाइम्स के बाद दूसरा इज्जतदार दैनिक "डेली टेलीग्राफ" समझा जाता है। इसका डील डौल टाइम्स से कुछ बड़ा है। इसमें सदैव २० पृष्ठ रहते हैं। इसका कागज टाइम्स से कुछ हलका पर मोटा रहता है। छपाई अच्छी रहती है। ग्राहक संख्या में यह टाइम्स से बढ़ कर है। इसकी दैनिक बिक्री अनुमान तीन लाख है। इसके लेख किसी किसी के विचार में टाइम्स से

मि० मर पर्चाहिल इत्यादि । मि० मर पर्चाहिल दक्षिण अफ्रीका
के युद्ध में टलीग्राफ के सं० के समाचार लाता था । इसके स्थायी
सैनिक सम्पादक मिस्टर नाद वर्न हैं । इन्होंने अनेक स्वक्षेत्र
देते हैं । आप स्काटलैंड के ...न पव पढ़ई के पुत्र हैं । आपका
स्वास्थ्य बहुत अच्छा है । ...प सदैव प्रसन्न मुख रहते हैं ।
आयु आपकी ५५ वर्ष का है । ...या और परिश्रम ने इन्हें इस
उच्च पद पर पहुंचाया है । टेलीग्राफ के मुख्य प्रबन्धकर्ता मिस्टर
राज हैं । इनका भी टलीग्राफ से पुराना सबंध है । पर टेलीग्राफ
के मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं । टेलीग्राफ की उन्नति का विशेषांश
आप ही के उद्योग की बदौलत है । ये मैनेजर, ये समय पड़ने
पर आप सम्पादकी भी करते हैं । युद्धों में सैनिक समाद दाता
ओं का कार्य्य भार आपही के जिम्मे रहता है । आप स्वयं जा
कर समाचार भेजने का प्रबन्ध करते हैं ।

विलायती समाचार पत्रों में बड़ा जोर है । ये भले को बुरा
और बुरे को भला बना सकते हैं । उनकी कलम में ऐसी शक्ति है
कि वह महाभारत करा सकती है, और यदि चाहे तो शान्ति भी
स्थापन कर सकती है । उससे देश का बड़ा उपकार भी हो
सकता है। दक्षिण अफ्रिका के युद्ध के समय टेलीग्राफ ने विधवा
ओं और अनाथ बालकों के लिए जो अपील की थी उस से
४० लाख रुपया इक्ट्ठा हुआ था । लन्दन के कई अस्पतालों को

का अन्दाजा किया जा सकता है। पर इस थोड़े से खर्च के कारण आज उस दुकान की आमदनी सहस्रों रुपए रोज की है। लार्ड बर्नहम के निकटवर्ती रिश्तेदार मिस्टर हैरी लासन टेलीग्राफ के सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। यानी दैनिक पत्र का कुल भार इन्हीं पर है। लासन साहेब का इस विषय का अनुभव भी अच्छा है। वे सम्पादक भी रह चुके हैं। सर्व साधारण में उनकी इज्जत अच्छी है। टोरी पत्र से सम्बन्ध रखने पर भी सब दलों के लोग उनसे प्रसन्न रहते हैं। सन् १६०६ के सम्पादक-सम्मेलन के समय दोनों दलों ने उन्हें अपना मुख्य प्रतिनिधि चुना था।



और बनारस के पार्क तो कोई चीज ही नहीं। उन्हें तो पार्क कहना ही अन्याय है। यहां सबसे सुन्दर और सुहावने चार पांच पार्क हैं। हाइड पार्क सबसे विशाल है। इसका रकबा ६३८ एकड़ है। बाद इसके रीजेण्टस पार्क, सेंट जेम्स पार्क और फिन्सबरी पार्क हैं। परन्तु इन सबका रकबा १०० एकड़ से भी कम है। पार्कों का पूरा बयान करना कठिन है। उन पर एक पोथी लिखी जा सकती है।

पार्क एक उच्च श्रेणी के बाग से रहते हैं। परन्तु बाग और पार्क में जो भेद है वह आगे मालूम होगा। हर एक पार्क के चारों ओर लोहे के खम्भों में तार खिंचे हैं। मौके मौके पर खूबसूरत फाटक बने हैं, जिनमें से गाड़ी वगैरह आसानी से आ जा सकती हैं। फाटक में तीन दरवाजे होते हैं। बीच वाला दर्वाजा गाड़ी आदि के लिए और बाजू वाले पैदल आने जाने वालों के लिए हैं। ये दर्वाजे कुछ तंग होते हैं। हर एक पर "बाहर जाने का रास्ता" और "अन्दर आने का रास्ता" बड़े बड़े मोटे अक्षरों में लिखा रहता है। दर्वाजे पर पुलिस या कौंटी कौंसिल का चपरासी देख रेख के लिये खड़ा रहता है। आने जाने वाले चुपचाप अपने अपने रास्तों से बिना कहे निकलते या घुसते चले जाते हैं। फाटक पर पार्क खुलने या बन्द होने का समय लिखा रहता है। जाड़ों मे, जल्द दिन डूबने से, करीब सवा पांच बजे पार्क बन्द हो जाते हैं।

सेक्रेटरी ने हम से एक दिन कहा कि कलकत्ते जैसे शहर में भी यह बात नहीं है।

पार्क के अलग अलग स्थानों में पानी पीने का नल लगे हैं। इन नलों के खम्भे बड़े सुन्दर बने हैं। हर एक नल पर दो या चार छोटे छोटे कटोरे लोहे की जन्जीर से बँधे पड़े रहते हैं, जिनमें जिसकी तबीयत चाहे पानी पीता जाय। पानी सदैव बहता रहता है। बीच बीच में बड़े बड़े लम्बे चौड़े हरी दूब से ढँके हुए खेतनुमा खूबसूरत टुकड़े छूटे हुए हैं, जिन पर लोग बैठे या लेटे हुए दिखाई देते हैं। बैठने को पार्क भर में बेंचें पड़ी रहती हैं। घास बड़ी नहीं होने पाती, बराबर समय समय पर काट दी जाती है। तरह तरह के फूल और पौधे आदि अलग अलग क्यारियों में लगे हुए बड़े प्यारे लगते हैं। परन्तु यहाँ के फूल सुवास में बड़े मन्द होते हैं।

कुल पार्क बहुत साफ रक्खा जाता है, कूड़ा कचड़ा लेश मात्र को भी नहीं रहने पाता। बहुत से नौकर इसी काम पर नियत हैं। जगह जगह रद्दी कागज वगैरह डालने के लिए लोहे की टोकरियां लटकी रहती हैं, जिन पर "रद्दी कागज" लिखा रहता है। कोई गलती से कागज यहाँ वहाँ डाल देता नौकर उसी दम उसे उठा लेते हैं। ये लोग हाथ में गज डेढ़ गज लम्बा लोहे का नुकीला पतला टुकड़ा लिये फिरा करते हैं। जहां कोई कागज का टुकड़ा देखा झट उसको नोक से उठा लेते हैं। वृक्षों

सेक्रेटेरी ने हम से एक दिन कहा था कि कलकत्ते जैसे शहर में भी यह बात नहीं है।

पार्क के अन्दर जगह जगह पानी पीने के नल लगे हैं। इन नलों के खम्भे बड़े सुन्दर बने हैं। हर एक नल पर तीन या चार छोटे छोटे कटोरे जोड़े की ज़ञ्जीर से बँधे पड़े रहते हैं, जिनमें जिसकी तबीयत चाहे पानी पीता जाय। पानी सदैव बहता रहता है। बीच बीच में बड़े बड़े लम्बे चौड़े हरी दूब से ढँके हुए खेतनुमा खूबसूरत टुकड़े छूटे हुए हैं, जिन पर लोग बैठे या लेटे हुए दिखाई देते हैं। बैठने को पार्क भर में बेंचें पड़ी रहती हैं। घास बड़ी नहीं होने पाती, बराबर समय समय पर काट दी जाती है। तरह तरह के फूल और पौधे आदि अलग अलग क्यारियों में लगे हुए बड़े प्यारे लगते हैं। परन्तु यहाँ के फूल सुवास में बड़े मन्द होते हैं।

कुल पार्क बहुत साफ़ रक्खा जाता है, कूड़ा कचड़ा लेश मात्र को भी नहीं रहने पाता। बहुत से नौकर इसी काम पर नियत हैं। जगह जगह रद्दी कागज़ वगैरह डालने के लिए छोटे की टोकरियाँ लटकी रहती हैं, जिन पर "रद्दी कागज़" लिखा रहता है। कोई गलती से कागज़ यहाँ वहाँ डाल देता तो नौकर उसी दम उसे उठा लेते हैं। ये लोग हाथ में गज डेढ़ गज लम्बा लोहे का नुकीला पतला टुकड़ा लिये फिरा करते हैं। जहाँ कोई कागज़ का टुकड़ा देखा झट उसकी नोक से उठा लेते हैं। यूरोप

रहता है और समय समय पर बदल दिया जाता है। यह पानी नलों द्वारा आता जाता है। इन नहरों में दस बीस पचास छोटी छोटी किश्तियाँ पड़ी रहती हैं। जो फी घंटे अमुक किराए पर सैर करने के लिए लोग घुमाते फिरते हैं।

इनका किराया कहीं एक आना, कहीं दो तीन आने घंटा है। एक एक में चार छः नौजवान लेडी-जेण्टलमैन बैठ कर हवा खाते फिरते हैं। नावों को ये स्वयं चलाते हैं। किश्ती खड़ी होने की जगह घड़ी लगी रहती है, जिसे देख कर लोग अपना समय पूरा हो जाने पर बाहर आ जाते हैं।

जलाशय के किनारे, कतार में पीठदार बेंचें पड़ी रहती हैं, जिन पर स्त्री पुरुष बैठ झील की बहार देखा करते हैं। कोई कोई अपने छोटे छोटे बच्चों को सुन्दर गाड़ियों में रखके चारों ओर स्वच्छ हवा खिलाते फिरते हैं। एक आध शौकीन लेडी या जेण्टलमैन जंजीर से बँधा हुआ कुत्ता लिये घूमता है। उधर कुछ दूर चल कर बैंड बाजा बजता है, जहाँ सैकड़ों नर-नारियाँ बड़े प्यार से बाजा सुनते हैं। बैण्ड के आस पास कुर्सियाँ पड़ी रहती हैं। जिसे इन पर बैठने की इच्छा हो एक आना दे कर बैठ सकता है। साथ ही उसके जो गीत गाया जाता है उसका एक छपा हुआ परचा मिलता है। जो पैसा नहीं देना चाहते वे दूर खड़े रहकर सुनते हैं। बहुत सा रुपया इस प्रकार इकट्ठा

२५

भगवान् बुद्ध का उपदेश और उनकी शिष्य मण्डली

लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीधर वाजपेयी

[श्री० लक्ष्मीधर जी कानपुर ज़िले में मैथा नामक गाँव के रहने वाले हैं। आपका जन्म सन् १८७७ ई० में हुआ था। १४ वर्ष की उम्र में आपने स्कूल छोड़ दिया था। इसके बाद आपने अपने ही उद्योग से इतनी उन्नति की।

आप श्रीयुत माधवराव सप्रे के साथ 'हिन्दी केसरी' का सम्पादन करते रहे। फिर कोई ६ वर्ष तक आगरे के 'आर्य मित्र' तथा पूना के 'हिन्दी चित्रमय जगत्' का सम्पादन किया। अब कुछ समय से

जब दूसरी बार बुद्धदेव से बिम्बसार की भेंट हुई तब बिम्बसार स्वयं उनका शिष्य बन गया। बिम्बसार उनका बड़ा भक्त था।

राजगृह के पास सञ्जय नामक परिव्राजक रहता था। उसके ढाई सौ शिष्य थे। इन में सारिपुत्र और मौद्गलायन नामक दो बड़े विद्वान ब्राह्मण थे। इन दोनों ने परस्पर निश्चय किया था कि जिसको मोक्ष मार्ग पहले प्राप्त हो वह दूसरे को भी उससे परिचित करे। संयोग की बात है कि एक बार भगवान् बुद्ध का अश्वजित् नामक शिष्य भिक्षाटन करता हुआ राजगृह की ओर आया। उसको देखकर उपर्युक्त सारिपुत्र नामक ब्राह्मण ने उससे पूछा—

"भाई, आपकी मूर्त्ति प्रशान्त और कान्ति शुद्ध तथा उज्ज्वल दिखाई देती है। कहिए, आप किसके शिष्य हैं? आपका धर्मग्रन्थ कौन सा है?"

अश्वजित् ने उत्तर दिया—"शाक्यवंशी गौतम बुद्ध हमारे गुरु हैं। उन्हीं का धर्म हमने ग्रहण किया है।" सारिपुत्र ने पूछा, "आपके धर्म का क्या सिद्धान्त है? इस पर अश्वजित ने यह श्लोक कहा—

> ये धम्मा हेतुप्पभवा हेतु तेसां तथागतो।
> तेसां च यो निरोधो एवं वादी महासमनो॥

जाती अर्हन्त हैं। क्या आप अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते?" मौद्गलायन ने उत्तर दिया, "महाराज, यह काम कुछ कठिन नहीं है। परन्तु इस झगट में पड़ने की मुझे कोई आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि अपने पूर्व कर्म फलानुसार अब मुझे स्वयं ही इस सप्ताह में अपनी देह त्याग करनी पड़ेगी।" कहते हैं कि मौद्गलायन ने सचमुच ही उस सप्ताह में अपनी देह त्याग कर दी। अपने गुरुभाई मौद्गलायन की निर्वाण गाथा सुन कर सारिपुत्र ने भी अपनी देह त्याग कर दी। सारिपुत्र नालन्द में रहता था। भगवान् बुद्ध के यह दोनों बड़े प्रसिद्ध शिष्य थे। ये इनको अग्रश्रावक कहते थे।

भगवान् बुद्ध का पुत्र राहुल भी उनके मुख्य शिष्यों में था। उसको उन्होंने किस प्रकार धर्म की दीक्षा दी, इसकी कथा बड़ी विचित्र और करुणोत्पादक है। कहते हैं कि एक बार जब भगवान् बुद्ध अपने धर्म का प्रचार करते हुए अपनी जन्मभूमि कपिल वस्तु में पहुँचे तब उनके पिता राजा शुद्धोदन राजसी ठाट बाट के साथ उनसे मिलने आए। उस समय राजा शुद्धोदन ने जब अपने पुत्र को भिक्षा पात्र लिए हुए भिक्षुक के रूप में देखा तब वे बहुत लज्जित और क्रोधित हो कर बोले, 'वत्स, तुमने हमारे राजकुल को कलङ्क लगाया है। क्या तुम समझते हो कि हम तुमको और तुम्हारे शिष्यों को अन्न देने

उसको भीतर से बेचैन कर रहा था। ऐसी दशा में राजा रमणी यता से उसको सुख कैसे मिल सकता था? राजवैद्य जीवक राजा के पास ही बैठा था। उसने राजा के मन की दशा को ताड़कर बहुत ही शान्तिपूर्ण शब्दों में राजा के सामने बुद्धदेव की महिमा का वर्णन किया तथा उनके शरण में आने का राजा को उपदेश किया। राजा तुरन्त ही हाथी पर सवार होकर बुद्धदेव के दर्शन को गया और भगवान् बुद्ध के उपदेश से उसको अनुपम शान्ति का लाभ हुआ। इस प्रकार राजा अजातशत्रु ने बुद्धदेव की शिष्यता स्वीकार की।

वैद्य विद्या में जीवक अत्यन्त ही कुशल था। अपस्मार, यक्ष्मा, कुष्ट इत्यादि असाध्य रोगों से पीड़ित सैकड़ों रोगी दूर दूर से उसके पास आया करते थे। धनाढ्य रोगी द्रव्य की बड़ी बड़ी राशियां उसके सामने रख देते थे, पर राजवैद्य जीवक को द्रव्य की क्या परवा? बौद्ध धर्म पर उसकी विशेष श्रद्धा थी, अतएव पहले वह बौद्ध भिक्षुओं को ही देख कर उनका इलाज मुफ्त में करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक रोगी कपट से बौद्ध भिक्षु बन जाते और जीवक के इलाज से रोगमुक्त होते ही बौद्ध धर्म का त्याग कर देते। इससे बौद्ध मठों में संसर्गज रोगों की वृद्धि होने लगी। अतएव बुद्धदेव को यक्ष्मा, अपस्मार, कुष्ट इत्यादि रोगों से पीड़ित लोगों के लिए संघ में प्रवेश करने का कठोर निषेध करना पड़ा।

"हे शिष्य, तू जिस देश में धर्म प्रचार के लिए जा रहा है, वहां के लोग बहुत ही दुष्ट, कट्टर और अत्याचारी हैं। वे जब तेरी निन्दा करने लगेंगे अथवा तुझको अपशब्द कहने लगेंगे तब तू क्या करेगा?" पूर्ण ने उत्तर दिया—

'मैं बिलकुल चुप रहूँगा।"

"और यदि वे पकड़ कर तुझको पीटेंगे तो तू क्या करेगा?"

'मैं उनको बदले में नहीं मारूँगा।'

"अच्छा, यदि वे तुझे पकड़ कर तेरा वध करना चाहें तो?"

मैं उनको धन्यवाद दूँगा, क्योंकि इसमें मैं संसार के त्रिविध तापों से अनायास ही मुक्त हो जाऊँगा। अतएव मैं उनके प्रयत्न में बाधा नहीं डालूँगा।"

पूर्ण का उत्तर सुन कर बुद्धदेव बहुत प्रसन्न हुए। यह सोच कर कि धर्म प्रचार करने के लिए ऐसे ही दृढ़ और सहनशील पुरुष की आवश्यकता है, उन्होंने पूर्ण को आशीर्वाद दे कर विदा किया।

पूर्ण अपने कार्य में पूर्णतया सफल हुआ और धर्म प्रचार का कार्य बड़ी योग्यता के साथ उसने किया।

अब बुद्धदेव के एक पट्ट शिष्य का कुछ वृत्तान्त दे कर हम यह लेख समाप्त करेंगे। इस शिष्य का नाम था आनन्द। आनन्द ने भगवान् बुद्ध से किस समय और कैसे दीक्षा ली,

पिण्डक और पूर्ण के समान श्रेष्ठी भी उनके शिष्य थे। यही नहीं, बल्कि उनके शिष्यों में सुनीत नाम का एक भङ्गी था, अंगुलीमाल नामक एक डाँधिया (चोरी का व्यवसाय करने वाला), स्वाति नामक एक मछुआ, नन्द नामक एक ग्वाला और उपाली नाम का एक नाई था। इसी प्रकार अनेक निम्न श्रेणी के लोग उनके उपदेशों से कृतार्थ हुए।

भगवान् बुद्ध के शिष्य दो श्रेणियों में विभक्त थे। एक तो वे लोग जो गृहस्थाश्रम छोड़ कर सन्यास दीक्षा लेते थे। इन को भिक्षु कहते थे। दूसरे वे लोग जो गृहस्थाश्रम में रह कर ही उनके उपदेशों का पालन करते थे। इन को उपासक कहते थे। राजा बिम्बसार, कोसलराज प्रसेनजित, वैद्यराज जीवक, श्रेष्ठी अनाथ पिण्डक इत्यादि द्वितीय श्रेणी के शिष्य थे।

पुरुषों की भाँति अनेक स्त्रियाँ भी बुद्धदेव के सम्प्रदाय में सम्मिलित हुई थीं। वे भी बड़े उत्साह से बौद्ध धर्म का प्रचार करती रहती थीं।



रविवार छुट्टी का दिन है। भारत वर्ष में छोटे छोटे बच्चे जो स्कूलों में पढ़ते हैं, वे भी यह बात जानते हैं। एशिया और अफ्रीका में जहां जहां ईसाई लोगों का राज्य है, सब कहीं स्कूलों और दफ्तरों में रविवार की छुट्टी रहती है। परन्तु रविवार की छुट्टी किस तरह मनानी चाहिये, यह बात ईसाई धर्मावलम्बियों के बीच रहे बिना, अच्छी तरह नहीं अनुभव की जा सकती। रविवार की छुट्टी मनाने के लिये शिकागो में कैसे कैसे स्थान बनाये गये हैं और किस प्रकार वहां वाले जीवन का आनन्द लूटते हैं, इसका संक्षिप्त हाल इस लेख में सुनाते हैं।

ईसाई धर्म्म में रविवार को काम करना मना है, इसलिये सब दुकानें, पुस्तकालय, कारखाने आदि इस दिन बन्द रहते हैं। क्या निधन, क्या धनवान्, क्या नौकर, क्या स्वामी, क्या बालक, क्या वृद्ध क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब के लिये आज छुट्टी है। साढ़े दस ग्यारह बजे, नियत समय पर, प्रातःकाल प्रायः सब लोग अपने अपने गिरजा घरों में जाते हुए दिखाई देते हैं। वहां ईश्वराराधना करने के बाद घर लौटकर भोजन करते हैं। फिर कुछ आराम करके सैर को निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है, संसार के बड़े शहरों में इसका तीसरा नम्बर है। यहां एक 'फील्ड म्यूजियम' अर्थात अजायब घर है। यह मिशिगन झील के किनारे, शिकागो

सबसे अधिक सक्षम प्राणी ही संसार में बाकी रहते हैं, इस सिद्धान्त की पुष्टि इन दृश्यों को देखते ही हो जाती है । जब हमने इन चीजों को देखा, तब तत्काल हमें यह विचार हो आया कि क्या भारत वासियों का नाम, उनकी चीजें, उनका इतिहास आदि सब कुछ नष्ट होकर किसी दिन लन्दन के अजायबघर में ही तो न रह जायगा ।

इस अजायब घर के मध्य में कोलम्बस की दीर्घकाय मूर्ति विराजमान है । इस जिनोआ निवासी कोलम्बस की मूर्ति को देख कर दर्शक के मन में भाँति भाँति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है । पुराने अमेरिका और आज के अमेरिका में कितना अन्तर है ! यहाँ के वे प्राचीन निवासी कहाँ गए ! पिछली तीन शताब्दियों में यहाँ भूमि का कैसा रूप बदला है ! कहाँ यूरोप ! कहाँ अमेरिका ! हजारों कोस का अन्तर ! भारत वर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल से इधर आ निकलता है । उसका आना क्या है, यमराज के आने का सन्देश है ! हजारों वर्षों से रहने वाले, स्वतन्त्रता से विचरने वाले, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या मनुष्य सभी तीन ही शताब्दियों के अन्दर स्वाहा हो जाते हैं । करोड़ों भैंसे अमेरिका के जङ्गल में न जाने कब से आनन्द पूर्वक विचरते थे, पर आज उनका नाम निशान तक नहीं मिलता । उन सब जीवों ने क्या अपराध किया था ? क्या एक दूसरे देश में

को देखिए तो स्वतन्त्रता उनके माथे पर जगमगा रही है। नवयुवक अपनी प्रियतमाओं के साथ इधर से उधर, उधर से इधर, घूमते और वार्तालाप करते हुए क्या ही भले मालूम होते हैं। मिशिगन झील भी उनके इन भावों को देख कर प्रसन्न मालूम होती है। वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हें आशीर्वाद सा दे रही है। जल की तरंगें छोटे छोटे बालकों को देखकर उनसे मिलने के लिए, बड़े आह्लाद से आगे बढ़ती हैं, परन्तु तत्काल ही यह सोचकर कि शायद कुछ बेअदबी न हुई हो, पीछे हट जाती हैं। इस समय भगवान् सूर्य अपने दिन के कार्य्य को पूर्ण कर पश्चिम की ओर गमन करते हैं।

इस अजायब घर के सिवा और भी बहुत से स्थान शिकागो निवासियों का रविवार मनाने के लिए हैं। कितने ही उद्यान ऐसे हैं, जहां पियानो बाजे तथा मन बहलाने के और कई सामान रक्खे रहते हैं। वहां जाकर लोग बैठते हैं, संगीत सुनते हैं, और आनन्द में मग्न होकर घर आते हैं।

यहां एक उद्यान है जिसका नाम "हम्बोल्ड पार्क" है। इसमें नहर के ढङ्ग के, जल के बड़े बड़े और लम्बे कुण्ड हैं, जिनमें जल भरा रहता है और छोटी छोटी नावें पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिए हैं। ग्रीष्म-काल में यहां नावों की दौड़ होती है। रविवार के दिन ५

लिंकन उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें अमेरिका के विख्यात योद्धा वीरवर ग्राण्ट की मूर्ति है। आपका दर्शन इस देश के इतिहास के ज्ञाता को एक भयङ्कर युद्ध का स्मरण कराते हैं। यह युद्ध गुलामी की प्रथा को बन्द करने के लिए आपस में हुआ था। अमेरिका के उत्तर के लोग चाहते थे कि गुलामों का व्यापार बन्द हो जाय। उनका यह सिद्धान्त था कि न्याय की दृष्टि से सब आदमी बराबर हैं, जीवन और स्वतन्त्रता के स्वाभाविक नियमों में सबका हक एकसा है। वे नहीं चाहते थे कि अमेरिका जैसे स्वतन्त्र देश में मनुष्य भेड़ बकरियों की तरह बिकें। इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिये एक लोमहर्षण युद्ध उत्तर और दक्षिण निवासियों में हुआ, और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर-वीर ग्राण्ट इस युद्ध में उत्तर वालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हब्शियों को वैसा ही चाहते थे जैसा कि गोरे चमड़े वाले अमेरिका के निवासियों को। इस महात्मा का स्मारक चिन्ह दर्शक को नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है कि किसी मनुष्य को दूसरे पर दुष्टता करने का अधिकार नहीं है, सब मनुष्य इस विषय में बराबर हैं। समाज एक यन्त्र की भांति है, मनुष्य समुदाय उसके पुर्जे हैं, अपनी अपनी योग्यतानुसार सब समाज के सेवक हैं, किसी से घृणा मत करो। क्या काला, क्या गोरा, क्या ऊँच जाति, क्या नीच जाति—सब एक ही पिता के पुत्र हैं।

कर सकते। उनके लिए ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायब-घरों में घूमने की स्वतन्त्रता है। यत्न यह किया गया है कि सब को इस देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहाँ जो धन व्यय किया जाता है, वह शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार की उन्नति के लिए किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिये। यहाँ पर बहुत से नाटक घर, प्रदर्शिनियाँ और समाज हैं, जहाँ अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लोग अक्सर रात को गिरजा में भी जाते हैं। वहाँ रात को भी उपदेश, गायन और हरि कीर्तन होता है। यहाँ एक जगह श्वेत नगर नाम की है, वहाँ बहुत से लोग जाते हैं। इस जगह को श्वेत नगर इसलिये कहते हैं कि यहाँ बिजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन ही सा रहता है। इसके विशाल द्वार पर बड़े मोटे मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरों में "दी ह्वाइट सिटी" लिखा हुआ है। बिजली की महिमा यहाँ खूब ही देखने को मिलती है। स्थान स्थान पर प्रकाशमय रंग बिरंगे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट मिनट पर रंग बदलते हैं। इस श्वेत-नगर के भीतर अनेक मनोरंजक स्थान हैं। कहीं पर गाना हो रहा है, कहीं बड़े बड़े कमरों में नाच हो रहा है, कहीं सरकस का तमाशा है। दुनिया भर के तमाशा करने वाले यहाँ लाये जाते हैं; और गरमी के दिनों में ये तीन ही चार मास में

करते हैं। अब यहाँ वालों की जीवन-चर्या का मिलान यदि हम भारतवर्ष से करते हैं, तो कितना बड़ा अन्तर पाते हैं! उन तमाशों या नाटकों की बात जाने दीजिए, जिनको हममें से बहुत से अच्छा न समझें, पर और ऐसे कितने मनोरञ्जक या शिक्षा प्रद खेल तमाशे हैं, जिनका हमारे स्वदेशी भाइयों को शौक़ हो? वे अपने अवकाश को—अपनी छुट्टियों को किस तरह बिताते हैं? भंग पी कर, ताश खेल कर, पतंग उड़ा कर, और व्यर्थ के बकवाद में लिप्त रह कर। वक़्त की वे क़ीमत ही नहीं जानते! यद्यपि कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे हैं, जो इन बुराइयों से बचे हुए हैं, परन्तु वे तीस करोड़ की जन-संख्या में दाल में नमक के बराबर भी नहीं। आधी संख्या हमारे देश में मूर्खा स्त्रियों की है, जिनको बाहर निकलने की आज्ञा ही नहीं! जहाँ के निवासी सैकड़े पीछे पाँच से भी कम साक्षर हैं, उन्हें दुर्व्यसनों में डूबने से भगवान् ही बचावे!

  

रंग भूमि, कायाकल्प प्रेमाश्रम, निर्मला और मेरा सदन। 'कहानियों की पुस्तकों में से मुख्य ये हैं—नव निधि मान सरोवर प्रेम प्रसून, प्रेम पूर्णिमा प्रेम पचीसी और कर्म भूमि'।

इस समय आप बनारस में जागरण नाम के साप्ताहिक और 'हंस' नाम के मासिक पत्र का सपादन कर रहे हैं।]

[१]

दीवाली की सन्ध्या थी। श्रीनगर के घूरा और खँडहरों के भी भाग्य चमक उठे थे। कस्बे के लडके लडकियाँ श्वेत थालियाँ में दीपक लिए मन्दिर की ओर जा रही थीं। दीपों से अधिक उनके मुखारविन्द प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह रोशनी से जगमगा रहा था। केवल पण्डित देवदत्त का सतघरा भवन अन्धकार में काली घटा की भाँति गम्भीर और भयङ्कर रूप में खड़ा था। गम्भीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नति के दिन भूले न थे। भयङ्कर इसलिए कि यह जगमगाहट मानों उसे चिढा रही थी। एक समय वह था जब कि ईर्ष्या भी उसे देख देख कर हाथ मलती थी, और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपालों की जगह अब मदार और एरण्ड के वृक्ष खड़े थे। दीवान खाने में एक मतङ्ग साँड अकड़ता था। ऊपर के घरों में जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहारी सङ्गीत गाती थीं, वहा आज जङ्गली कबूतरों के मधुर स्वर सुनाई देते थे। किसी अँगरेजी मदरसे के विद्यार्थी के

सत। और राज्य को मिटा दिया और उनके साथ तिगारिया का यह श्रम धनपूर्ण परिवार भी मिट्टी में मिल गया। खजाना लुट गया, बही-खाते पसारियों के काम आये। जब कुछ शान्ति हुई, रियासत फिर सँभली तो समय पलट चुका था। वचन लेख के अधीन हो रहा था, तथा लेख में भी सादे और रंगीन का भेद होने लगा था।

जब देवदत्त ने होश सँभाला तब उसके पास इस खँडहर के अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति न थी। अब निर्वाह के लिए कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिए धन और बुद्धि की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं थी कि कहीं नौकरी करते। परिवार की प्रतिष्ठा दान लेने में बाधक थी। अस्तु, साल में दो तीन बार अपने पुराने व्यवहारियों के घर बिन बुलाये पाहुनों की भांति जाते और जो कुछ विदाई तथा मार्ग-व्यय पाते उसी पर गुजारा करते। पैतृक प्रतिष्ठा का चिह्न यदि कुछ शेष था तो वह पुरानी चिट्ठी पत्रियों का ढेर तथा हुंडियों का पुलिन्दा, जिनकी स्याही भी उनके मन्द भाग्य की भांति फीकी पड़ गई थी। पण्डित देवदत्त उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते थे। द्वितीया के दिन जब घर घर लक्ष्मी की पूजा होती है पण्डितजी ठाट बाट से इन पुलिन्दों की पूजा करते। लक्ष्मी न सही, लक्ष्मी का स्मारक-चिह्न ही सही। दूज का दिन पण्डितजी की प्रतिष्ठा के श्राद्ध का दिन था। इसे चाहे विडम्बना कहो, चाहे मूर्खता, परन्तु

देख कर भी उसे आनन्द नहीं हुआ। बोला—हाँ, आज दीवाली है। गिरिजा ने आँसू भरी दृष्टि से इधर उधर देख कर कहा—हमारे घर में क्या दीप न जलेंगे?

देवदत्त फूट फूट कर रोने लगा। गिरिजा ने फिर उसी स्वर में कहा—देखो, आज बरस बरस के दिन घर अँधेरा रह गया। मुझे उठा दो, मैं भी अपने घर में दीप जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्त के हृदय में चुभी जाती थीं। मनुष्य की अन्तिम घड़ी लालसाओं और भावनाओं में व्यतीत होती है।

इस नगर में लाला शङ्करदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। वे अपने प्राण-सञ्जीवन औषधालय में दवाओं के स्थान पर छापने का प्रेस रक्खे हुए थे। दवाइयाँ कम बनती थीं किन्तु इश्तहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसों का ढकोसला है और पोलिटिकल एकानोमी (अर्थशास्त्र) के इस विलास पदार्थ से जितना अधिक सम्भव हो टैक्स लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पड़े और मुफ्त में दवा करावे? भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इसने मनुष्यों को असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भर से नित्य उनके निकट दवा लेने आता था। परन्तु वैद्यजी कभी उसकी ओर इतना ध्यान नहीं देते थे

आपका लज्जात दुनिया से महरूम रहना, आपकी खाना तारीकी, यह सब इस सवाल का नफी में जवाब देते हैं। सुनिए, मैं कौन हूँ। मैं वह शख्स हूँ जिसने इमराज इन्सानी को पर्दए दुनिया से गायब कर देने का बीड़ा उठाया है। जिसने इश्तिहारबाज, जौ फरोश गन्दुमनुमा बने हुए हकीमों को बेख व बुनसे खोद कर दुनिया को पाक कर देने का अज्म बिलजज्म कर लिया है। मैं वह हैरत अंगेज इन्सान अद्दुलबियान हूँ जो नाशाद को दिलशाद, नामुराद को बामुराद, भगोड़े को दिलेर, गीदड़ को शेर बनाता है। और यह किसी जादू से नहीं, मंत्र से नहीं, यह मेरी ईजाद करदा 'अमृत बिन्दु' के अदना करिश्मे हैं। अमृतबिन्दु क्या है इसे कुछ मैं ही जानता हूँ। महर्षि अगस्त्य ने धन्वन्तरि के कान में इसका नुसखा बतलाया था। जिस वक्त आप वी०पी० पार्सल खोलेंगे, आप पर उसकी हकीकत रौशन हो जायगी। यह आबे हयात है। यह मर्दानगी का जौहर, फरजानगी का अक्सीर, अक्ल का मुरब्बा, और जेहन का सोकल है। अगर वर्षों की मुशायरा बाजी ने भी आपको शायर नहीं बनाया, अगर शावान रोज के रटन्त पर भी आप इम्तहान में कामयाब नहीं हो सके, अगर दल्लालों की खुशामद और मुवक्किलों की नाज बर्दारी के बावजूद भी आप अहाते अदालत में भूके कुत्ते की तरह चक्कर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड़ फाड़ चीखने और मेज पर हाथ पैर पटकने पर भी अपनी तकरीर से कोई असर पैदा

[४]

यही अमावस्या की रात्रि थी। वृक्षों पर भी सन्नाटा छा गया था। जीतने वाले अपने बच्चों को नींद से जगा जगा कर इनाम देते थे। हारने वाले अपनी रुष्ट और क्रोधित स्त्रियों से क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इतने में घण्टों के लगातार शब्द वायु और अन्धकार को चीरते हुए कान में आने लगे। उनकी सुहावनी ध्वनि इस निस्तब्ध अवस्था में अत्यन्त भली प्रतीत होती थी। यह शब्द समीप होते गये और अन्त में पण्डित देवदत्त के समीप आकर उसके खंडहर में डूब गए। पण्डित जी उस समय निराशा के अथाह समुद्र में गोते खा रहे थे। शोक में वे इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणों से भी अधिक प्यारी गिरिजा की दवा-दरपन कर सकें। क्या करें? इस निष्ठुर वैद्य को यहाँ कैसे लायें? जालिम! मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तेरे इश्तहार छापता। तेरी दवाइयाँ कूटता। आज पण्डित जी को यह ज्ञात हुआ है कि सत्तर लाख की चिट्ठी पत्रियाँ इतनी कौड़ियों के मोल की भी नहीं। पैतृक प्रतिष्ठा का अहंकार अब आँखों से दूर हो गया। उन्होंने उस मखमली थैले को सन्दूक से बाहर निकाला और उन चिट्ठी पत्रियों को, जो बाप दादा की कमाई का शेषांश थीं और प्रतिष्ठा की भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, वे एक एक करके दीया को अर्पण करने लगे।

पर आपके पूर्वजों ने बड़े अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्पदा है सब आपके पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनों से आपका नाम सुना था और मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शनों की आकांक्षा थी। आज वह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म सफल हुआ।

पण्डित देवदत्त की आँखों में आँसू भर आये। पैतृक प्रतिष्ठा का अभिमान उनके हृदय का कोमल भाग था।

वह दीनता जो उनके मुख पर छाई हुई थी थोड़ी देर के लिए विदा हो गई। वे गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपने को उन लोगों की सन्तति कह सकूँ। इतने में नौकर ने आँगन में फर्श बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगीं, वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पण्डित जी के मुख को इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रातःकाल की वायु फूलों को खिला देती है। पण्डित जी के पितामह ने नवयुवक ठाकुर के पितामह को पचीस सहस्र रुपये कर्ज दिये थे। ठाकुर अब गया में जाकर अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था, इस लिए जरूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ ऋण हो उसकी एक एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुर को पुराने बही-खाते में यह ऋण दिखाई दिया। पचीस

ईश्वर ने चाहा तो तू अब बच जायगी। इस उन्मत्तता में उन्हें एकदम यह नहीं जान पड़ा कि 'गिरिजा' तो अब वहाँ नहीं है, केवल उसकी लोथ है।

देवदत्त ने पत्री को उठा लिया और द्वार तक वे इस तेजी से आये मानो पाँव में पर लग गये हैं। परन्तु यहाँ उन्होंने अपने को रोका और हृदय में आनन्द की उमड़ती हुई तरंग को रोक कर कहा–यह लीजिये, यह पत्री मिल गई। संयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख के कागज दीमकों के आहार बन गये।

आकस्मिक सफलता में कभी कभी सन्देह बाधा डालता है। जब ठाकुर ने उस पत्री के लेने को हाथ बढ़ाया तो देवदत्त को सन्देह हुआ कि कहीं वह उसे फाड़ कर फेंक न दे। यद्यपि यह सन्देह निरर्थक था, किन्तु मनुष्य कमजोरियों का पुतला है। ठाकुर ने उनके मनके भाव को ताड़ लिया। उसने बेपरवाही से पत्री को लिया और मशाल के प्रकाश में देख कर कहा—अब मुझे पूर्ण विश्वास हुआ। यह लीजिये, आपका रुपया आप के समक्ष है। आशीर्वाद दीजिये कि मेरे पूर्वजों की मुक्ति हो जाय।

यह कह कर उसने अपनी कमर से एक थैला निकाला और उसमें से एक एक हजार के पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्त को दे दिये। पण्डित जी का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। नाड़ी तीव्र गति से कूद रही थी। उन्होंने चारों ओर

गुना प्यारी है।

वैद्यजी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना कहा—मुझे अत्यन्त शोक है, मैं सदैव के लिए तुम्हारा अपराधी हूँ। किन्तु तुमने मुझे शिक्षा दे दी। ईश्वर ने चाहा तो अब ऐसी भूल कदापि न होगी। मुझे शोक है। सचमुच महाशोक है।

ये बातें वैद्य जी के अन्तःकरण से निकली थीं।



प्राचीन भारत के धार्मिक और राष्ट्रीय नेताओं ने दिखाइ, वह आश्चर्य जनक है। करोड़ों मनुष्यों में एक नाम के प्रेम का सफलता पूर्वक ऐसा दृढ कर देना कोई सहज काम न था। इस प्रचार के लिए कई सौ वर्षों का आंदोलन आवश्यक हुआ होगा। उस आंदोलन का इतिहास हम से छिपा हुआ है। परन्तु हम अमरिका में देखते हैं कि आज कल वाशिंगटन और लिंकन के उत्सव मनाए जाते हैं। लिंकन का उत्सव तो एक बिलकुल नई संस्था का काम है। इसी प्रकार हिन्दू जाति के प्राचीन नेताओं ने विशेषतः श्रीरामचन्द्र जी के जीवन के वर्णन को राष्ट्रीय उन्नति का साधन समझा, बड़े परिश्रम और उत्साह से सारे देश में इस संस्था की स्थापना की। हम इस विशाल मनोहर वृक्ष को देखते हैं पर जड़ें हमारी आंखों से छिपी हुई हैं। हिन्दी देश के लिए तो रामायण काव्य ऐसा है, जैसा मछली के लिए पानी। सोते जागते उठते बैठते, घर में, बाजार में, हम राम नाम ही सुनते हैं। हिन्दी देश के हिन्दुओं का सामाजिक जीवन राम नाम की सुगंधि से महक रहा है।

मैं अब यह पूछना चाहता हूँ कि प्राचीन भारत के बुद्धिमान् और दूरदर्शी राष्ट्रीय नेताओं ने राम चरित और रामायण को क्यों ऐसी ऊँची पदवी दी? उन का क्या विचार था, और उनको रामायण के द्वारा क्या काम सिद्ध करना था? आज कल भी रामायण हमारे लिये किस प्रकार शिक्षाप्रद है?

बहुत से हिन्दू कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी ने अपने पिता के वचन का पालन किया, और वह अपने बाप के बड़े आज्ञाकारी पुत्र थे। पिता का आदेश मानने अथवा पिता के वचन को सच्चा रखने की शिक्षा भी निस्सन्देह रामायण में पाई जाती है। परन्तु ऐसे साधारण घरेलू गुणों के आधार पर किसी देश में किसी मनुष्य के लिये न तो उत्सव स्थापित किए और न महाकाव्य लिखे गए हैं। यह रामायण का सारांश नहीं है। यह केवल आरंभ की एक घटना है। पुनः यदि पिता का वचन मानने से देश और जाति की हानि होती हो, तो ऐसा आज्ञाकारी पुत्र होना भी ठीक नहीं है। पिता की आज्ञा पर सदा चलना केवल बालकों का कर्तव्य है। बीस पचीस वर्ष की आयु पाने पर प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने विवेक के अनुसार जीवन व्यतीत करे। भगवान बुद्ध और हकीकतराय ने तो पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया, परन्तु हम उन का भी आदर करते हैं। अस्तु ऐसे वैयक्तिक कुटुम्ब-सम्बन्धी व्यवहार से रामायण का सार हमारी समझ में नहीं आ सकता।

हिन्दुओं में सैकड़ों वर्षों की गुलामी के कारण केवल धार्मिक और वैयक्तिक गुणों पर ध्यान देने का स्वभाव पैदा हो गया है। स्वतन्त्र राष्ट्र और प्रजातन्त्र शासन प्रणाली के अभाव में जाति और राजनैतिक आदर्श हमारी समझ में शीघ्र नहीं आते। मैं

अपना गुरु और नेता मानने लग गए। जिन असभ्य साधुओं में न तो शरीर का बल और सौंदर्य हो, न इतिहास, साहित्य और विज्ञान का परिचय हो, न तो राजनीति को समझने की शक्ति हो और न युद्ध में लड़ने का वीर्य हो, न तो स्त्री का प्रेम और आदर हो और न बालकों में स्नेह हो, उन्हें अब धार्मिक नेता और गुरु माना जाता है। जो मूर्ख सारी अभिलाषाओं का त्याग कर, कुटुम्ब, स्त्री, राष्ट्र, जाति पर लात मार, वन में बैठ कर, अपने शरीर को सुखा कर, आँखें बन्द कर बैठ जाय और कभी कभी सचेत भी हो जाय, वह तो मानो धर्म रूपी हिमालय के गौरी शंकर पर्वत पर चढ़ गया। हम ऐसे ही निकम्मे, टूटे-फूटे, अधूरे, अशिक्षित सन्यासियों को 'आदर्श मनुष्य' मानने लगे। परन्तु रामायण और महाभारत में इस झूठे-आदर्श का लेश मात्र भी नहीं मिलता। यदि प्राचीन हिन्दुओं को ऐसी मूर्खता, नग्नता और शून्यता से प्रेम होता, तो सारे भारतवर्ष में हिन्दू सभ्यता कभी न फैलती। जब हम रामायण को पढ़ते हैं, तो प्रतीत होता है कि हम आधुनिक यूरोप में हैं। परन्तु जब हम पश्चात्कालिक धर्म ग्रन्थों को पढ़ते हैं, तो श्मशान अथवा चिकित्सालय की दुर्गन्ध आती है। रामायण का सन्देश है—"कुछ करो", परन्तु "अध्यात्मविद्या" की दूसरी पुस्तकों का उपदेश है—'कुछ मत करो।" यही भेद है।

अस्तु, श्री रामचन्द्र जी में वे कौन-से गुण थे, जिनकी

देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतम्,
श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तो नरचन्द्रमा ।

अर्थात्, वक्ताओं में श्रेष्ठ, तप और स्वाध्याय में संलग्न, तपस्वी, मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकि ने नारद से पूछा कि इस संसार में सद्गुणों से अलंकृत, गुणियों में श्रेष्ठ, धर्मात्मा, कृति, सत्यवादी, दृढ़व्रत कौन कहा जाता है ? उदार आचार में कौन सम्पन्न है, सब प्राणियों के हित में कौन रत है, कौन वीर, उदार और सुन्दर है ? यह महान् व्यक्ति कौन है, जिसने क्रोध को जीत लिया है, धैर्यवान् है, जो निष्कलंक है तथा जिसके क्रोध उत्पन्न होने पर देवता भी डरते हैं ? कौन उदार है, त्रैलोक्य की भी रक्षा करने में समर्थ है, कौन प्रजा हित में रत है, सब गुणों और सम्पदाओं का भाण्डार है ? किस एक व्यक्ति में लक्ष्मी समग्र-रूप से आश्रित है, और कौन अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र और उपेन्द्र के समान है ? हे नारद, तुम से वास्तव में मैं यही सुनने की इच्छा करता हूँ, क्योंकि हे देवर्षि तुम्हीं इस प्रकार के व्यक्ति को जानने में समर्थ हो ।

तीनों काल के जानने वाले नारद मुनि ने वाल्मीकि के ये वाक्य सुन कर कहा—अच्छा, सुनो । तुमने जिन गुणों का वर्णन किया, वे बहुत और दुर्लभ हैं । इतने दुर्लभ गुणों का एक मनुष्य में इस संसार में पाना बहुत कठिन है। इन गुणों से युक्त तो मैं देवताओं में भी किसी को नहीं देखता । हाँ, मनुष्यों में

वह मुनि और इतिहास यह देखते थे कि इस व्यक्ति में शरीर का सौंदर्य भी है, विद्या भी है, और सदाचार भी है। इसी कारण नारद मुनि ने कहा कि ये गुण तो बहुत और दुर्लभ भी हैं। रामायण का प्रथम उद्देश्य यही है कि 'पूर्ण व्यक्तित्व' का ज्ञान हो। यही प्राचीन ग्रीस देश का आदर्श था।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य का एक विशेष गुण भी होता है। पूर्ण व्यक्तित्व की परीक्षा में श्रीरामचन्द्र जी ने एक विषय में अर्थात् क्षात्र धर्म में सबसे अधिक नम्बर पाए। आज कल तो ऐसे नपुन्सक साधुओं का आदर्श मनुष्य माना जाता है जो तलवार या बन्दूक को देख कर ही घबरा जायँ।

परन्तु प्राचीन भारतवर्ष का यह आदर्श न था। श्रीरामचन्द्र जी की विशेष कीर्ति तो युद्ध में वीरता के कारण ही थी— पिता का आज्ञाकारी पुत्र होने से नहीं। इस बात का प्रमाण हमें भगवद्गीता में मिलता है। ११ वें अध्याय में श्रीकृष्ण जी संसार की सब उत्तम वस्तुओं का वर्णन करके कहते हैं कि वह सब मैं ही हूँ। जिस प्रकार नदियों में गंगा, मुनियों में कपिल इत्यादि श्रेष्ठ हैं, वैसे ही इन शब्दों के साथ साथ ये शब्द भी पाए जाते हैं—"राम शस्त्रभृतामहम्"। इस से प्रत्यक्ष है कि श्रीरामचन्द्र जी को ऐसा योद्धा माना जाता था, जैसे आजकल फ्रेडरिक, नेपोलियन, वाशिंगटन, मोल्टके, अनवर पाशा आदि सेनापतियों को माना जाता है। राम का

रहा। प्राचीन ग्रीस देश के महाकाव्य 'इलियट' में भी इसी प्रकार लिखा है कि एक राजा किसी दूसरे राजा की स्त्री को बहका कर अपने साथ ले गया (परन्तु वह स्त्री स्वयं भी जाना चाहती थी) और इस कुकर्म के कारण दश वर्ष तक ऐसी लड़ाई हुई, जिस में ग्रीस देश का सब जातियों ने भाग लिया और सैनिक भेजे। परन्तु यह कौन विश्वास कर सकता है कि ऐसे छोटे कारण का इतना बड़ा कार्य हो सकता है।

इतिहास कोई मानमती का मेल नहीं है। बड़ी घटनाओं के बड़े कारण होते हैं। और यदि श्रीरामचन्द्रजी अपनी धर्मपत्नी को फिर अपने घर ले आए, तो इससे सारी जाति में कृतज्ञता का ऐसा दृढ भाव क्या कर उत्पन्न हो सकता था? यदि एक राजा दूसरे राजा से निजी बात के लिये युद्ध करता, तो इस से सारे भारतवर्ष में उसकी ऐसी धूम क्योंकर मच सकती थी? यदि वह अपनी स्त्री को बचा लाए, तो अच्छी बात हुई। वह आनंद से रहें। यह बात राष्ट्रीय सेवा नहीं मानी जा सकती, जिसके लिए बड़े काव्य लिखे जाएँ।

राम और रावण के युद्ध के क्या कारण थे? मेरी तुच्छ सम्मति में यह राम और रावण की निजी लड़ाई नहीं, किन्तु भारतवर्ष की दूसरी अहिन्दू जातियों के साथ हिन्दू-जाति का अन्तिम संग्राम था। उस समय हिन्दू जाति ने उत्तर भारत में अपनी सभ्यता स्थापित की थी। इनकी भारतवर्ष में वैसी ही

गया। भारतवर्ष की एकता में कुछ न्यूनता न रही। यदि आज दक्षिण भारत अहिन्दू होता, तो हमें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। दक्षिण में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और दूसरे प्रसिद्ध हिन्दू नेताओं ने जन्म लिया। "पण्डिता दाक्षिणात्या"—"दक्षिण के पंडित विख्यात हैं।"—ये शब्द भी प्रायः सुने जाते हैं। दक्षिण के मराठों ने हिन्दू साम्राज्य स्थापित करके हिन्दू सभ्यता की रक्षा की। ये सब फल राम के युद्ध से हमें मिले। दक्षिण ने हिन्दू सभ्यता की जो सेवा की है, उसका आरंभ वास्तव में इसी राम रावण युद्ध से हुआ।

इस काम में राम ने जो चतुराई दिखाई, उसका वर्णन पढ़ कर तो आज कल के अँगरेज और फ्रांसीसी राजनैतिक नेताओं और सेनापतियों का ध्यान तुरन्त आ जाता है। उन्होंने दक्षिण के कई छोटे छोटे राजाओं को साम, दाम और भेद से अपने साथ मिला लिया। पर कुछ रावण के पक्षपाती भी रहे होंगे। विभीषण का फोड़ लेना बड़ी नीति का खेल था। ऐसी चालें अँगरेजों ने भी भारतवर्ष में बहुत चली हैं। हम हिन्दू कहते हैं कि विभीषण एक पवित्र और धार्मिक मनुष्य था, जो रावण के पाप को देख कर भाई का विरोधी हो गया। यह हमारी पुरानी साम्राज्य-लालुपता का दृश्य है। वास्तव में विभीषण ने लालच से राम की सहायता की, ताकि लङ्का का सिंहासन उसे मिल जाय। अँगरेजों को कई ऐसे विभीषण

केवल धार्मिक और वैयक्तिक गुणों का उपदेश न देंगे, अपितु महाकाव्य का वास्तविक अभिप्राय समझ कर श्रीरामचन्द्रजी की राष्ट्रीय सेवा की ओर भी नवयुवकों का ध्यान आकर्षित करेंगे। यतोरामस्ततोजय।

अपे—विएन, स्वीडन।

—हरदयाल

  

मनुष्य की अन्वेषणा और विचार परम्परा ज्ञान की किस सीमा तक पहुँच चुकी है, उसकी उसे खबर नहीं रहती। उसके लिए उसके पूर्व का काल अन्धकारमय है। न जाने कितने लोग हो गए कैसे कैसे विचार कर गए, पर उसे क्या ? वह जो सामने देखता है वही जानता है, और शिक्षा के अभाव के कारण वह अच्छी तरह देख भी नहीं सकता। वह अपने ही फैलाए हुए अन्धकार में गिरता पड़ता है, टेढ़ी मेढ़ी पगडण्डियों में भटकता फिरता है, वह नहीं जानता कि मनुष्यों के श्रम से एक चौड़ा सीधा मार्ग तैयार हो चुका है।

यहां हम पढ़ने के दो एक अत्यन्त प्रत्यक्ष लाभों की ओर ध्यान दिलाते हैं। यह विषय जैसा उपयुक्त है वैसा ही मनोरञ्जक भी है। पहली बात तो यह है कि पढ़ने से इतिहास और काव्य में हमारी गति होती है, और भूत काल की घटनाएँ हमारे हृदय में प्रत्यक्ष हो जाती हैं। इनके द्वारा हमें संसार के बड़े बड़े राज्यों की उत्पत्ति, वृद्धि और पतन का पता चलता है। पढ़ने से हमें विदित होता है कि किस प्रकार मनुष्य जाति की सभ्यता का प्रवाह कभी कुछ दिनों के लिए रुकता, कभी पीछे हटता हुआ, कभी एक स्थान में बँधता, कभी दूसरे स्थान पर बढ़ुरता हुआ, कभी कुछ दिनों के लिए उथला और छिछला पड़कर फिर अनिवार्य्य वेग के साथ बढ़ता, गम्भीर होता हुआ, अखंड, अतत आगे ही बढ़ता

विचार करते हैं। एक धार्मिक उपदेशक कहता है कि "चाहे एक व्यक्ति को लो, चाहे एक जाति का लो, सब में समृद्धि के दिन प्राय वे ही होते हैं जिनके पीछे घोर विपत्ति के दिन आते हैं।" चाहे चन्द्रगुप्त, सिकन्दर, खुसरो, तैमूर आदि बड़े बड़े विजेताओं को लो, चाहे हस्तिनापुर, पाटलिपुत्र, एथेंस, रोम आदि की ओर ध्यान दो, बात एक ही होगी। अपनी रक्षा के निश्चय ही में नाश का अंकुर रहता है, अपने पराक्रम की भावना और उसे दिखाने की वासना ही से पतन भी होता है। भाग्य के इस अचानक पलटा खाने पर हमें ध्यान देना चाहिये। पर सबसे अधिक ध्यान तो हमें इस विश्वव्यापक नियम की ओर देना चाहिए कि प्रौढ़ता और शक्ति के पीछे के दिनों में जीव में भीतर ही भीतर भोग, विलास, अनीति और दुर्व्यसन का घुन शक्ति को खाने लगता है, अधिक तड़क भड़क और शान दिखाई पड़ती है, यहाँ तक कि बाहर से देखने वालों को शक्ति की स्थिरता का अधिक विश्वास होता है। लोक में कहावत प्रसिद्ध है कि जब दीपक बुझने को होता है तब अधिक जगमगाता और भभकता है। पारसियों का प्रताप इतना प्रबल और कभी नहीं दिखाई पड़ा था जितना उस समय जब क्षयार्ष ने अपनी असंख्य सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की थी। पर यथार्थ में पारसी जाति की शक्ति उस समय इतनी क्षीण हो गई थी कि थोड़े ही आघात से ध्वस्त हो

यदि पाठक चाहे तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति उसको तुच्छ चिंताओं से मुक्त करके ऐसी भावमयी सृष्टि में ले जाने के लिये तैयार रहेगा जहाँ सांसारिक प्रपंचों का लेश नहीं। चाहे कितनी ही घोर निस्तब्धता हो उसके कानों में प्रकृति का मधुर और रहस्यपूर्ण संगीत पड़ेगा, कोमल और गंभीर वचन सुनाई देगा। कालिदास अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से उसे मेघ के साथ अलकापुरी में पहुँचायेंगे, जहाँ—

नित पौन के प्रेरे कितै कहुँ बादर घूमत घूमत आवत हैं।
जलबूँदन की रेखा करके अगनान के चित्र मिटावत हैं॥
भयभीत से फेरि झरोखन ह्वै सिमिटे तन बाहर धावत हैं।
कढि जात धनी वेगि धुआ बनि के बडे चातुर वेहु कहावत हैं॥

अथवा भवभूति के साथ जाकर वे उस दंडक वन में थोड़ा विश्राम पायेंगे जहाँ—

कहुँ सुन्दर घनस्याम कतहुँ धारे छवि घोरा।
कहुँ गिरि खोहन गूँजि, रटत झरनन कर सोरा॥
सुनसान कहुँ गंभीर वन, कहुँ सोर वन पसु करत हैं।
कहुँ लपट निसरत सुप्त अजगर सास सन तरु जरत हैं॥
गिरिखोह में कछु जल भरे, कछु छुद्र खात लखात हैं।
अहिस्वेद गिरगिट पियत तहँ जर प्यास सन घबरात हैं॥

तुलसीदास उसे अपने साथ गंगा उतर कर वन की ओर

ज्ञान का एक ऐसा प्रचुर भंडार हो जाय कि उसमें से समय समय पर जब जैसा अवसर पड़े हम शांति, उपदेश और उत्साह प्राप्त कर सकें। इस प्रकार का भांडार अधिकार में रखना उपयोगी और आनन्दप्रद दोनों है। बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जब हमारा जी टूट जाता है और हमारी शांति शिथिल हो जाती है। सोचिए तो कि ऐसे अवसरों पर किसी ऐसे पुरुषार्थी महात्मा के उत्साहपूर्ण वचनों में कितना उत्साह प्राप्त होगा जिसने कठिन सकट और विघ्न सहे, पर अंत में अपने अध्यवसाय के बल से सिद्धि प्राप्त की। इस वचन से कितना उत्साह मिलता है—

> छाड़िये न हिम्मत, बिसारिए न हरि नाम,
> जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिये।

प्रयत्न में हताश या दुखी व्यक्ति को कितना धैर्य बँध सकता है। यदि उसे किसी ऐसे महात्मा के वचन सुनने को मिले जो दु:ख पड़ने पर कहता है—"ईश्वर चाहता है कि हम इस दशा में रहें, हम इस कर्तव्य को पूरा करें, हम इस व्याधि को भोगें, हम इस विपत्ति में पड़ें, हम यह अपमान और ताप सहें, ईश्वर की ऐसी इच्छा। ईश्वर की यही इच्छा है, हम या संसार चाहे जो कुछ कहे। उसकी इच्छा ही हमारे लिये परम धर्म है।" बहुत से अवसर आते हैं जब दूसरों की इच्छा के अनुसार कार्य करना, दूसरों की अधीनता स्वीकार करना,

अन्तर है कि मैं आज मरूंगा और आप कल।" इस 'अभिप्राय गर्भित' वाक्य से किसका उत्साह नहीं बढ़ेगा, जिसका चित्त दृढ़ नहीं होगा। कोई छोटा है या बड़ा, यह कोई बात नहीं। मुख्य बात यह है कि जो जिस श्रेणी में है वह उसके धर्म का पालन करता है या नहीं। साधारण विद्या बुद्धि का मनुष्य भी यदि मर्यादा का ध्यान रखता हुआ धर्मपूर्वक अपना कार्य करता जाय तो वह उसी प्रकार सफल मनोरथ हो सकता है जिस प्रकार कोई बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य। इस विषय पर मुझे बहुत कहने की आवश्यकता नहीं। पढ़ने का बड़ा भारी अलभ्य और मनोहर लाभ यह है कि उससे चित्त शुभ भावनाओं और प्रौढ़ विचारों से पूर्ण हो जाता है। जब कभी जी चाहे मनुष्य चुप चाप बैठ जाय और जो कुछ उसने पढ़ा हो उसका चिंतन करता हुआ उपयोगी और आनन्दप्रद विचारों की धारा में मग्न हो जाय। इस के लिये उसे किसी प्रकार के बाहरी आधार की आवश्यकता नहीं। खाली बैठे रहने के समय—जैसे रेल, नौका आदि की यात्रा में—हमारे लिए यह एक अच्छा लाभकारी मानसिक व्यायाम रक्खा हुआ है कि हम किसी अच्छे ग्रंथकार की कोई पुस्तक उठा लें और उस की बातों को, उसकी चमत्कार पूर्ण उक्तियों या तथा उसके मनोहर दृष्टान्तों को हृदय में इस क्रम से धारण करते जायँ कि जब अवसर पड़े तब हम उन्हें उपस्थित कर

२९

मेघ

अनुवादक—श्रीयुत रूप नारायण पाण्डेय

[मेघ और वृष्टि दोनों लेख बङ्गाल के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचना हैं। श्री० रूपनारायण जी का जन्म लखनऊ के रानी कटरे में संवत् १९४१ में हुआ। आप को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली। आपने अपने ही परिश्रम से अपना ज्ञान बढ़ाया। आप बहुत अच्छे अनुवादक हैं। आपने बहुत सी बंगला पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। आप इन्दु, माधुरी सुधा निगमागम चन्द्रिका आदि कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी कर चुके हैं। इनके द्वारा रचित और अनुवादित पुस्तकों की संख्या ६० से ऊपर है।]

और भैया, वृत्रासुर के वध के समय इन्द्र की सहायता में जो मैं ने गर्जन किया था, तुम उस गर्जन को सुनने की इच्छा न करना—डर मालूम होगा।

बरसूँगा क्यों नहीं? देखो, कितनी गृही की कलियाँ मर जल कणों की आशा से ऊपर मुँह उठाए हुए हैं। उन के मुख में स्वच्छ जल मैं न सींचूँगा तो और कौन सींचेगा?

बरसूँगा क्या नहीं? देखो नदियों का शरीर अभी तक पुष्ट नहीं हुआ। ये मेरी दी हुई जलराशि को पाकर परिपूर्ण हृदय से हँसती हँसती, नाचती नाचती, कलरव करती हुई अनन्त सागर की ओर चलेंगी। यह देख कर किसे बरसने की इच्छा न होगी? मैं नहीं बरसूँगा। देखो, यह पाजी औरत मेरे ही दिये पानी को कलसी में भर कर लिए जाती है, और 'आग लगे इस बरसने पर, बूँद नहीं टूटती!' कहकर मुझ को ही गालियाँ देती चली जाती है। मैं नहीं बरसूँगा।

मुझे याद है—

मन्द मन्द नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां।
वामश्चाय नदति मधुरं चातकस्ते सगर्वं॥

कालिदास आदि जहाँ मेरी स्तुति करने वाले हैं, वहाँ मैं क्यों न बरसूँ? मेरी भाषा को कविवर शैली समझते थे। जब मैं कहता हूँ—'ब्रींग फ्रेश शॉवर्स फार दी थर्स्टिङ्ग फ्लॉवर्स', तब उस गम्भीर वाणी के मर्म को शैली जैसा कवि हुए बिना

मुझसे बात चीत करने लगती है। मैं भी उसके आलाप से मुग्ध हो रहा हूँ। तुम कोई सम्बन्ध ठीक करके उसके साथ मेरा विवाह करा सकते हो ?

—[बंकिम निबंधावली से]



नीचे उतर कर सूखी हुई पृथ्वी को भर दें।

पृथ्वी को डुबा देंगी। पवन की चोटी पर चढ़ कर, उसकी छाती पर पैर रखकर पृथ्वी पर उतरना होगा—झरने के मार्ग में मोती का आकार धारण कर निकलेंगी। नदियों के शून्य हृदय को परिपूर्ण करके, उन्हें रूप का वस्त्र पहना कर, महातरङ्गों से भीषण बाजा बजा कर, लहर के ऊपर लहर उठा कर हम क्रीडा करेंगी। आओ, सब नीचे उतरें।

कौन युद्ध करेगा—वायु! छिः! वायु के कंधे पर चढ़ कर हम देश देशान्तर में घूमेंगी। हमारे इस वर्षा-युद्ध में वायु हमारा घोड़ा है। उसकी सहायता पावें, तो हम जल थल एकाकार कर दें। हवा की सहायता मिलने से हम बड़े बड़े घरों को ढा देने की शक्ति रखती हैं। वायु के कन्धे पर चढ़कर लोगों के घरों के दरवाजों के भीतर घुसती हैं। किसी की बड़े यत्न से बिछाई हुई शय्या को हम भिगो देती हैं—सोती हुई सुन्दरी के ऊपर जाकर गिर पड़ती हैं। वायु तो हमारा गुलाम है।

देखो भाई, कोई अकेले न नीचे उतरना। एका ही हमारा बल है। नहीं तो हम कुछ भी नहीं हैं। चलो। हम क्षुद्र वृष्टि-बिन्दु हैं, किन्तु पृथ्वी के प्राणों की रक्षा करेंगी। खेतों में अन्न उपजावेंगी—मनुष्यों के प्राणों की रक्षा होगी। नदियों में नावें चलेंगी, मनुष्यों का रोजगार चलेगा। तृण, लता, वृक्ष आदि

हमने जल की जाति में जन्म पाया है। परन्तु तो भी हम रंग रस करना जानती हैं। लोगों के छप्पर फाड़ कर घर के भीतर झाँकती हैं। स्त्री पुरुष जिस घर में सोये होते हैं, वहाँ छत के छेद से भीतर जा कर उनको चौंका देती हैं। जिस राह में बहू-बेटियाँ कलसी लेकर पानी भरने जाती हैं, उसी राह में हम कीचड़ कर रखती हैं। चमली का पराग धो डाल कर भौंरों को भूखों मारती हैं। नौकर चाकर कपड़ा धो कर फैलाते हैं तो उसे कीचड़ में डाल कर उनका काम बढ़ा देती हैं। हम क्या कम दिल्लगी बाज हैं। तुम सब चाहे जो कुछ कहो, हम रसिका हैं।

खैर इसे जाने दो, हमारा बल देखो। देखो पर्वत, कंदरा, घर द्वार आदि सब को धो कर हम एक नई ही हरी भरी पृथ्वी की रचना कर देंगी। देखो शिथिल, दुर्बल नदी को कूलप्लाविनी, देश को डुबानेवाली, अनन्त-तरङ्ग-सकुला, लम्बे चौड़े पाट की जल राक्षसी बना देंगी। किसी देश में मनुष्यों की रक्षा करेंगी—किसी देश के मनुष्यों का (बाढ़ के द्वारा) संहार करेंगी—कितने ही जहाजों को ठिकाने पर पहुँचा देंगी, और कितने ही जहाजों को डुबा कर ठिकाने लगा देंगी, पृथ्वी को जलमयी बना देंगी। फिर भी हम क्षुद्र हैं? हमारे जैसा क्षुद्र और कौन है? हमारे जैसा बलवान् और कौन है? —["बङ्किम निबंधावली" से]

उस की रक्षा के लिए यों गिडगिड़ाने की क्या जरूरत है? दुर्गादास! औरङ्गजेब क्या इस बच्चे के भी प्राण लेना चाहता है?

दुर्गादास—नहीं तो इसके पकड़ने का और क्या उद्देश्य हो सकता है महाराना?

रानी—एक लड़का और एक लड़की—केवल यही सम्पत्ति लेकर उस दिन दिल्ली से निकली थी। राह में लड़की मर गई। अब मेरी सम्पत्ति में केवल यही दूध पीता बच्चा है। मेरे इस सर्वस्व पुत्र की रक्षा कीजिए महाराना! ईश्वर आप का भला करेंगे।

राजसिंह—पुत्र के लिए कुछ भी चिन्ता न करो महामाया! मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा।

रानी—राना की जय हो!

राजसिंह—दुर्गादास, औरंगजेब के अत्याचार की मात्रा धीरे धीरे बढ़ती चली जा रही है। उन्होंने हिन्दुओं के ऊपर फिर से "जजिया" लगाया है। उसके ऊपर मारवाड़ पति जसवन्तसिंह के परिवार पर ऐसा दारुण अन्याय! देखूँ, पत्र लिख कर शायद औरंगजेब को ठीक राह पर ला सकूँ।

रानी—पत्र लिख कर! अनुनय विनय करके! घुटने टेक कर, भीख माँग कर! नहीं महाराना, इस तरह ढीले पड़ कर नहीं। अब की इस बादशाहत को जड़ से उखाड़े बिना मेरे

जात खराब नहीं है। हम सब हो मरते हैं पर नमक हराम नहीं।

राजसिंह—नहीं कासिम, मैं तुम्हारी जाति की निन्दा नहीं करता, बादशाह के साथ तुम्हारी तुलना करता हूँ। बादशाह इस छोटे बच्चे की जान लेना चाहते हैं, और तुम—

कासिम—आहा, कैसा सोना मानो सुन्दर बच्चा है। दावन से जी चाहता है, गोद में लेकर प्यार कर लूँ।

राजसिंह—औरङ्गजेब, तुम दिल्ली के सिंहासन पर बैठ कर निरीह बालक की हत्या करने के लिए व्यग्र हो रहे हो और तुम्हारी ही जाति का यह कासिम उसे प्राण देकर भी बचाने के लिए तैयार है। ईश्वर की दृष्टि में कौन बड़ा है औरङ्गजेब ?

रानी—राना, मैं इस भारी अत्याचार का बदला लूँगी। इसका बदला चुकाने के लिए ही मैं उस दिन और स्त्रियों के साथ नहीं जल मरी। इसी के लिए अब तक जिन्दा हूँ। आप केवल इस बच्चे की रक्षा कीजिए।

राजसिंह—मैं कह चुका हूँ, इस के लिए कोई चिन्ता नहीं है। महामाया, तुम अपने लड़के को ले कर यहीं बेखटके रहो।

रानी—नहीं राना, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। अब यह मेरा घर नहीं है। मैं अपने स्वर्गवासी स्वामी के राज्य को लौट जाऊँगी। सम्पत्ति और विपत्ति में, शान्ति और अशान्ति में, जीवन और मरण में, स्वामी का घर ही स्त्री का घर है, पिता का घर नहीं है। मैं मारवाड़ चली जाऊँगी।

राजसिंह—धन्य हो दुर्गादास ! तुमने मुगलों को मेवाड से निकाल बाहर कर दिया ।

रानी—धन्य हो दुर्गादास ! तुम बेगम को क़ैद कर लाए । आज मैं बदला चुकाऊँगी ।

राजसिंह—क्या ! दुर्गादास, तुम बादशाह की बेगम को क़ैद कर लाए हो ? कौन बेगम ?

दुर्गादास—काश्मीरी बेगम—गुलनार ।

राजसिंह—उन्हे क़ैद कर लाए ? उसी घडी छोड नहीं दिया ?

दुर्गादास—राना साहब, मैं केवल सेनापति था । युद्ध में शत्रु के आदमियों को क़ैद करने भर का मुझे अधिकार था । क़ैदियों के छोडने का अधिकार राजा को होता है ।

राजसिंह—जाओ दुर्गादास, बेगम साहबा को इसी दम छुटकारा देकर इज्जत के साथ बादशाह के पास भेज दो ।

रानी—क्या राना ?

राजसिंह—स्त्री के साथ हम लोगों का कुछ झगडा नहीं है ।

रानी—स्त्री के साथ झगडा नहीं है ! तो फिर मैं ने क्यों आकर आपका आश्रय लिया महाराना ? मुझे ही पकडने के लिए क्या यह भारी चढाई नहीं हुई है ? मैं यदि इस युद्ध में पकड ली जाती, तो बेगम मेरे साथ क्या सलूक करती ?

राजसिंह—हम मुगलों की नीति का अनुकरण करने

समेटे बैठे हैं। आकाश का वज्र सदा पापी के सिर पर ही नहीं गिरता महाराज! पुण्यात्मा के सिर पर भी गिरता है। भूकम्प में पापी का ही घर बार नहीं नष्ट होता, बेचारे निरीह लोगों के झोपड़े भी मिट्टी में मिल जाते हैं। प्रबल बढ़िया में छुद्र घास फूस ही बहते हैं, बड़े बड़े पेड़ वैसे ही सिर ऊँचा किये खड़े रहते हैं। ईश्वर का नियम धर्म-अधर्म का विचार नहीं करता—वहां जिसे दुर्बल, जीर्ण पुराना पाता है, उसी की गर्दन पहले दबाता है।

राजसिंह—[शान्त भाव से] महामाया! जोश में आकर ईश्वर का विचार करने के लिए तैयार न होओ—निश्चय करो, ईश्वर के नियम से अन्त का अधर्म का अवश्य पतन होगा।

रानी—कब होगा? मैंने तो आज तक नहीं देखा राना! मैंने तो आज तक यही देखा है कि सरलता सदा से चालाकी के पैरों पड़ कर भीख माँगती आती है, चालाकी ने एक बार उसकी ओर आँख उठा कर देखा भी नहीं। सत्य सदा से झूठ की गुलामी करता है—अपने मस्तक को ऊँचा नहीं कर सकता। मैं सदा से न्याय की जगह पर अन्याय की विजय पताका फहराती हुई देख रही हूँ। मैं सदा से धर्म्म के टूटे मन्दिर में अधर्म का विजय ध्वनि सुनती आ रही हूँ। पुण्य के हरे भरे राज्य के ऊपर से भयानक रक्त-रञ्जित बढ़िया लहराती देख पड़ रही है। घूस, अत्याचार झूठ, विश्वासघात आदि से पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है। तब

बहुत से लेख लिखने के अतिरिक्त मैं न भय तक तीन से ऊपर पुस्तकों की रचना सपादन और अनुवाद किया है। साहित्य सेवा से ही मेरी रोटी चलती है। आज कल मैं जातपाँत तोड़क मण्डल, लाहौर, के मुखपत्र 'युगान्तर' का सपादन अवैतनिक रूप से करता हूँ और कृष्ण नगर, लाहौर में रहता हूँ।]

हिन्दुओं का जल पर विशेष प्रेम है। इनके तीर्थ और तपोवन प्राय सब के सब जल के ही किनारे हैं। हमारा खयाल है कि हिन्दुओं के समान स्नान करने वाली जाति ससार में और दूसरी नहीं। करोड़ों हिन्दू ऐसे हैं जो बिना स्नान किए अन्न जल नहीं ग्रहण करते। एक दिन एक मुसलमान हकीम जी ठीक ही कह रहे थे कि हिन्दू रोगी चिकित्सक से जिस बात की बार बार आज्ञा माँगता है वह स्नान है। मुसलमान रोगी कहता है, हकीम साहब, मुझे एक आध बोटी मांस खाने की आज्ञा दे दीजिए। इसके विपरीत हिन्दू कहता है, हकीम जी, स्नान किए बिना मुझे भूख ही न लगेगी, और नहीं तो मुझे हाथ पैर धोने की तो अनुमति अवश्य दीजिए। इस छोटी सी बात से दोनों धर्मों के मानने वालों का मनोभाव स्पष्ट मालूम हो जाता है। हिन्दू-स्त्रियों में कार्तिक स्नान की बड़ी महिमा है। बच्ची बूढ़ी सभी कार्तिक-स्नान करती हैं। जिन गाँवों अथवा नगरों के निकट नदी है, वहाँ की स्त्रियाँ प्रात काल उठकर

हो गया है और आशा होती है कि शीघ्र ही नदी तक सारा मार्ग आबाद हो जायगा। इस सड़क पर लोगों ने भजन पूजा आदि के लिये देवालय बनवा लिये हैं, साथ ही कुएँ भी। एक वेद मंदिर और दूसरा बिहारी भवन दो प्रसिद्ध जगहें हैं। यहां लोग व्यायाम स्नान और संध्या वंदन करते हैं।

लाहौर ऐसी जनाकीर्ण महानगरी में रहते हुए प्रातःकाल वायु सेवन के लिये न निकलना रोग और मृत्यु को अपने यहाँ निमंत्रण देना है। मैं जब से लाहौर में आया हूँ, रोज सवेरे नदी पर जाता हूँ। मैं पांच बरस से देख रहा हूँ कि जो लोग सन् १९०७ में नदी पर जाते थे वही अब भी जाते हैं। इन में कुछ लोग ऐसे हैं जो बारहों महीने निरन्तर प्रातःकाल नदी पर पहुँचते हैं। इन पर वर्षा और शीत का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु इनकी संख्या है बहुत थोड़ी। इन से अधिक संख्या उन लोगों की है जो ग्रीष्म और वर्षा-ऋतु में ही जाते हैं, पौष माघ की कड़कड़ाती सरदी में इनके दर्शन नहीं होते। इन से भी बढ़कर संख्या उन पसली वटेरों की है जो रविवार, संक्रांति या अमावास्या आदि किसी विशेष दिन ही नदी की मछलियों का दर्शन देने आते हैं। लाहौर में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से अधिक है। परन्तु नदी पर जाने वालों में रूमी टोपियां और बुरकों की शक्ल क्वचित् ही देख पड़ती है।

"जय सीताराम! जय सीताराम"! घुटनों तक धोती, सिर पर दो तीन पेंच का साफा और हाथ में डोरी लोटा लिए ये तिलकधारी भक्त जो "जय सीताराम! जय सीताराम" कहते आ रहे हैं, कौन हैं? ज़रा ठहरिए, इनका आपको तमाशा दिखाएँ। "भक्त जी, जय राधेश्याम!" भक्त जी ठहर गए और बोले—"अबे लाग, तू लड़ाई लेना चाहता है? राधेश्याम कहा नहीं कि मुक्त हो गया नहीं। तू क्या चाहता है कि मैं मुक्त हो जाऊँ और तू मेरा लोटा डोरी छीन ले! सीताराम, सीताराम, कह। सवेरे सवेरे क्यों लड़ाई मोल लेता है?" इतने में एक और आवाज़ आई—'भक्त जी, राधेश्याम!' भक्त जी फिर बनावटी क्रोध से वही बातें कहने लगे। नदी तक पहुँचते पहुँचते न मालूम कितने मनुष्य इन्हें इसी प्रकार 'राधेश्याम!' कह कर छेड़ेंगे।

इधर देखिए, एक भक्त जन कुत्तों और कौओं को रोटी के टुकड़े डाल रहा है। देखना, कौए कैसे उड़ उड़ कर टुकड़ों को दबोच रहे हैं। ऐसे कई भक्त नित्य बलिवैश्य देव-यज्ञ किया करते हैं।

'दातून! दातून!' उधर देखिए एक भक्त लाला जी सिर पर दातूना का बड़ा सा गट्ठा रक्खे राह चलतों को दातूनें बाँटते चले आ रहे हैं। आप उच्च स्वर से 'दातून! दातून!' पुकारते हैं। जिसको आवश्यकता होती है वह उन से दातून ले लेता है। कैसा उपकार का काम है! पर कल मुझे एक बाबू को

वह अकेली जा रही है। मैं कई बरस से उसे इसी प्रकार अकेली आते देखता हूँ। वह चुपचाप जाती है। मुखमंडल से आत्मिक शांति टपकती है। सुना है, यह नित्य योगाभ्यास करने जाती है।

अधिकांश नर नारी गोशाला के पास होकर शीघ्र ही नदी पर पहुँच जाते हैं। नदी पर कोई पक्का घाट नहीं। एक जगह माई लोग स्नान करती हैं और उससे कुछ दूर हट कर पुरुष। पर हम उधर नहीं जाना चाहते, हम आगे जायँगे, पार्क की ओर भी नहीं मुड़ेंगे। सीधा पुल पर पहुँचेंगे। यहाँ बड़ा अच्छा दृश्य है। पुल के पास जंगल है। यहीं उतर कर शौचादि से निवृत्त हो लीजिए। यहीं से वापस लौटना होगा। देर हो गई है। नहीं तो वह सामने शाहदरा में जहाँगीर की समाधि तक चलते। चलो, लौटते हुए कुछ दूर तक दौड़ें। आध मील भी दौड़ लेने से पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। सारे दिन आलस्य नहीं आता। पुल से लेकर गोशाला तक की दौड़ काफी है।

अब आप को एक दूसरे प्रकार की सृष्टि नदी की ओर आती मिलेगी। यह देखिए, बुड्ढे बाबुओं की एक टोली टहलती हुई आ रही है। सब के सब बूट, कोट, पतलून और चश्माधारी हैं। हाथों में बेंत की छड़ियाँ हैं। इनमें कई तो पेंशनर मालूम होते हैं, और बाकी कचहरी के मुलाज़िम जान पड़ते हैं। इनका वार्तालाप सुनने का कई बार संयोग मिला

सड़क की दहिनी पटरी पर देखिए, कैसा विचित्र दृश्य है। एक लम्बी-चौड़ी और काली कलूटी भयङ्कर मूर्ति गधे पर सवार आ रही है। उसकी नाक में भद्दी सी कौंग है। एक हाथ में एक बहुत बड़ा हुक्का और दूसरे में एक मोटा और लम्बा डण्डा है। दोनों ओर टाँगें फैलाए बड़े रोब से बैठी है। इस युवती की विकराल काया को देख कर भय और विस्मय दोनों होते हैं। कहाँ तो पुष्प के सदृश कुम्हला जाने वाली लखपुर की कोमलाङ्गी किशोरियाँ और कहाँ यह भीमकाय आसुरी मूर्ति! ऐसे परस्पर-विरोधी नमूने इसी देश में सम्भव हैं।

चलो, अब जल्दी जल्दी घर पहुँचें। अभी हमें स्नान करना बाकी है।

  

ये मलाबार के सागर-तट के भयानक समुद्री लुटेरे थे। ये बड़े क्रूर, निःशङ्क और अघोरात्मा थे। इन के चित्र विचित्र दलों में लगभग सभी राष्ट्रों के ठग और कानून तोड़ने वाले लोग थे। इन की छोटी छोटी शीघ्रगामिनी नावें तोपों से सुसज्जित होती थीं। इनके केवट रक्त पिपासु और निःशङ्क लोग होते थे। ये पश्चिम और भारत के बीच व्यापार करने वाले बहुमूल्य माल से भरे जहाज़ों की प्रतीक्षा में पड़े रहते थे। ज्यों ही कोई जहाज़ इन की मार के भीतर पहुँचता ये झट उसके तख्ते पर चढ़ कर उस के केवटों का वध कर डालते। तत्पश्चात् ये उनके क़ीमती माल को अपनी डोंगी में रख लेते थे।

कभी कभी कोई बलवान् व्यापारी जहाज़ इन लुटेरों को मार कर हटा भी देता था और आधे के लग भग यात्रियों की प्राणहानि कराने के बाद किसी न किसी प्रकार बन्दर में जा पहुँचता था। जहाज़, आशा और उत्साह से भरे हुए, बन्दर से बाहर चले जाते थे और फिर संसार को उनका पता भी नहीं लगता था। तब जिन साहसी व्यापारियों ने उन्हें माल देकर भेजा था वे समुद्र पर खड़े हाथ पर हाथ मलते और समुद्री डाकुओं को गालियाँ देते हुए दांत पीसते थे।

आप कहेंगे कि सभी प्रतिद्वन्द्वी व्यापारी कुछ समय के लिये अपने भेद भावों को भूल कर इन सब के सांझे शत्रुओं को मिटा देने के लिये आपस में मिल क्या नहीं जाते थे?

हां चाहे झूठी, इन से उन मनोरंजक साहसी लोगों के रीति रिवाजों पर उज्ज्वल प्रकाश पड़ता है। इस लिए, आइए, जरा अंग्रेज़-वंश के अद्‌भुत उदय की कथा पर ध्यान दें।

कहते हैं, सन् १६४८ में एक अरबी व्यापारी जहाज मस्कत से चला। मौसम बहुत ही खराब था। वायु उसे ढकेल कर भारत के पश्चिमी सागर तट पर ले आई। अन्त में वह भील के समीप एक छोटी सी खाड़ी में किनार पर पहुँचा। इस लम्बी और कष्टदायक समुद्र यात्रा से मालिक और नौकर दोनों की तबियत पर बड़ा जोर पड़ा था। विध्वंस के समय उनके सम्बन्ध आपस में अच्छे नहीं रह थे। जब उस प्रदेश के राजा ने सुना कि एक अनजान जहाज उसके राज्य में किनारे पर आ लगा है, तो उसने सारी बातों का निरूपण करने के लिए अपने अफसर भेजे। मल्लाहों को इन अफसरों के कान में अपनी दुःख वार्ता डालने का अवसर मिल गया। उन्होंने अपने कप्तान पर क्रूर और अमानुषी बर्ताव का दोषारोपण किया। कप्तान ने भी अपना रोना सुनाया। उसने विस्तार के साथ बताया कि ये लोग मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन और विद्रोह करते थे। उसने अपने निर्णेताओं से नियमन और सुव्यवस्था के सिद्धान्त को ऊँचा रखने के लिए अपील की। परन्तु दुर्भाग्य से वह अकेला था और उस पर दोषारोपण करने वाले अनेक थे। अफसरों ने अपनी समदर्शिता प्रकट करते हुए निर्णय किया कि बहुसंख्या की इच्छा ही प्रधान मानी

वह अब आगे आया और उच्च स्वर से बोला—"जो गाड़ियाँ और असबाब ये छकड़े तुम लाए हो उन्हें लेकर घेरा बाँध लो।" वैसा ही किया गया और इस जल्दी में बनाए हुए रक्षा स्थान से वे शत्रु पर गोली बरसाने लगे। घटनावली में यह परिवर्तन देख मुगलों को कुछ विस्मय हुआ। परन्तु वे नहीं चाहते थे कि उनका शिकार इस तरह निकल जाए। इस लिए उन्होंने बड़े ज़ोर से धावा बोला। अन्त को रात हो गई। साहसी आंग्रे ने युद्ध की एक नई कल्पना तैयार की। उसने अपने साथियों को इकट्ठा किया और बीस दसी मनुष्यों को साथ ले, वह छिप कर मोर्चे से बाहर चला गया। यह छोटा सा दल चुप चाप और हौले हौले शत्रु-सेना के पिछले भाग के पास जा पहुँचा। गोली की मार के अन्तर पर पहुँच कर, गगन-भेदी स्वर से चिल्लाते हुए, उन्होंने हल्ला बोल दिया। गाड़ियों की ओट से बाक़ी के मनुष्य भी गोली बरसाने लगे। इस साहस के कार्य में उन्हें पूरी सफलता हुई। मुगलों ने समझा कि शत्रु की कुमुक आ गई है। इसलिये उन में घबराहट से भगदड़ मच गई। उनकी हार में अगर कोई त्रुटि रह गई थी तो उसे पूरा करने के लिये गढ़ की सेना ओट से बाहर निकल कर मुगलों पर टूट पड़ी। शत्रु दल के केवल छत्तीस मनुष्य जीते बचे, शेष सब काट डाले गये। कहते हैं, आंग्रे ने स्वयं अपने हाथ से चालीस आदमी मारे।

सेना का कमान अफसर बनने का अधिकार इसी का था। परन्तु नवयुवक राजा द्वितीय आंग्रे से कुछ बदगुमान रहता था। इस लिए प्रधान सेनापति किसी दूसरे अफसर को बनाया गया। आंग्रे का इस को अपना अपमान समझना स्वाभाविक था। उसने सोचा कि यदि मैं एक पक्ष की सेना का कमाण्डर नहीं बन सकता, तो कोई कारण नहीं कि मैं दूसरे पक्ष का सेना नायक क्यों न बनूँ। इसलिए उसने अपनी सेवाएँ सूरत के नवाब को पेश कीं। उसने इस सहायक सेनापति बना दिया।

आंग्रे ने नवाब का और भी अधिक कृपापात्र बनने के उद्देश्य से वीरता के बड़े बड़े अद्भुत कार्य किए। उसे अपने पहले स्वामी से थोड़ा बदला लेना बाकी था। इस लिए जो भी बन्दी उसके हाथ पड़ा वह उसने तलवार के घाट उतार दिया। जिस अफसर से उसका पद छीना था वह भी पकड़ा जा कर नवाब के सामने लाया गया। इससे आंग्रे को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अधिक खटराग किए बिना उसका सिर काट डालना चाहता था, परन्तु नवाब आगा पीछा करने लगा। बन्दी अपने बन्दी कर्त्ता के दयालु स्वभाव को ताड़ गया। उसने झट नवाब के सामने पांव पर गिर कर प्राणों की भिक्षा मांगी। नवाब ने कहा—'डरो मत, तुम्हारी प्राण हानि नहीं की जायगी।' इस से आंग्रे को बड़ी निराशा हुई। वह, अपने हृदय

नवाब को यह विचार बहुत अच्छा प्रतीत हुआ। वह अपनी सेना का एक बड़ा भाग लेकर चल पड़ा। उसने अपने जर-नैल के उपदेश पर इतनी पूरी तरह से आचरण किया कि उस ने तुरन्त अपने को एक लम्बे और तङ्ग नाले में बन्द हुआ पाया। जब वह नाले से निकल कर मैदान में आने लगा तो अपने मार्ग को शत्रु से रुका हुआ देख उसे बड़ी व्याकुलता हुई। जिस मार्ग से वह आया था उसी मार्ग से जाने का उसने यत्न किया, परन्तु आगे और उसके रुके हुए सिपाही दूसरे सिरे को रोके खड़े थे। अभागा नवाब पिंजरे में चूहे की तरह फँस गया। काल की कराल मूर्ति उसके सामने खड़ी अट्टहास कर रही थी। उसने बड़ी वीरता से शत्रुदल को तोड़ कर बाहर निकल जाने का उद्योग किया। परन्तु सफलता न हुई। उसकी सारी सेना नष्ट हो गई। उसके चुने हुए १००० मनुष्य रण भूमि में खेत रहे।

बदला ले चुकने के बाद आगे फिर अपने पुराने स्वामी से मिला। उसने इसे विधि पूर्वक अपना प्रधान मन्त्री बना लिया। इसके थोड़ी देर बाद बड़ी धूम धाम से उसका विवाह राजा की बहन के साथ हो गया। परन्तु इस पद और प्रतिष्ठा का आनन्द चिरकाल तक लेना उसके भाग्य में न था। सन् १६८६ में वह मुगलों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध कर रहा था कि एक गोली उसके हृदय को पार कर गई। वह वहीं ढेर हो गया।

पर सम्मान और प्रतिष्ठा की वृद्धि करदी गई।

इस बीच में आंग्रे सोच रहा था कि मैं अपने टापू से क्या काम लूँ। सहसा उस के मन में एक मनोहर विचार उत्पन्न हुआ। यूरपीय व्यापारी पश्चिमी सागरों से जो अमित धन राशि लाते थे उसे देख इसे बड़ा आश्चर्य होता था। वह सोचता था कि इस धन का कुछ भाग मेरे खजाने में क्यों न आय? उसने अपने ये विचार राजा पर प्रकट किए। वह भी कुछ कम उत्साही न था। उसने उसे रुपया, जहाज और सिपाही दिए। आंग्रे ने मजबूती के साथ अपने सागर परिवेष्टित दुर्ग की किला-बन्दी करना शुरू कर दिया। अब वह अपने जहाजों में बैठ कर समुद्र में जाता और जो भी व्यापारी जहाज रास्ते में मिलता उसे लूट लेता। थोड़े ही समय में वह व्यापारियों के लिए एक हौआ बन गया।

परन्तु तरुण समुद्री डाकू अपने चट्टान से घिरे हुए छोटे से टापू पर सन्तुष्ट न था—उसके मन में बहुत अधिक महत्वाकांक्षाएँ थीं। उसने कोई १०,००० मनुष्यों की सेना एकत्र की और नए मैदान मारने के लिए जहाज में बैठ कर सागर तट के साथ साथ गया। भारत के मान चित्र पर यदि आप दृष्टि डालेंगे तो आप को बम्बई और गोआ के बीच आधे मार्ग पर गेदिया नाम का एक स्थान लिखा मिलेगा। पुर्तगीजों ने यहां कई मजबूत किले बनाए थे। आंग्रे इस परिणाम पर पहुँचा

अन्दर बन गए, और आंग्रे सचमुच एक बड़े भूभाग का शासक हो गया। एक जहाज बढ़िया जाति के अरबी घोड़े लिए आ रहा था। संयोग से वह आंग्रे के हाथ पड़ गया। इस से उसके मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ। उसकी सेना पहले ही बड़ी भयानक थी। अब घुड़-सवार मिल जाने से उस में और भी वृद्धि हो गई। उस नाना भाँति की सेना में अनेक राष्ट्रों के लोग मिले हुए थे। हिन्दू, मूर, डचमैन, पोर्चु-गीज और फ्रेंचमैन, वरन् अँगरेजों ने भी सागर दस्यु की रक्त-रंजित ध्वजा के सामने राज भक्ति की शपथ ली थी। ये सब साहसी, निश्चिन्त, निकृष्ट योद्धा, विवेक शून्य और दुरात्मा थे, जिन को उन के देश वासियों ने उन के उच्छृंखल आचरण के कारण समाज से बहिष्कृत कर रक्खा था।

बड़े बड़े महाराजों के यहाँ जैसा ठाट बाट और शिष्टाचार होता है, वह सब काहनूजी ने उस सागर परिवेष्ठित दुर्ग में स्थापित कर दिया। अड़ोस पड़ोस के रजवाड़ों और प्रान्तों के राजदूत पाद-वन्दन के लिए उस के पास आने लगे। उसके सिंहासन के गिर्द समुज्ज्वल वस्त्रधारी लोगों की भीड़ लगी रहती थी। क़ीमती पोशाकों वाले जरनैल, सागर-सेनापति और दूसरे उच्चपदाधिकारी सदा उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे। ये कोई छैल-बाँके दरबारी नहीं थे—वरन भीषण डाकू थे, जिन की जड़ाऊ तलवारें और चमकती हुई कटारें

३५

उन्नत देश के देहाती कैसे रहते हैं

लेखक—श्रीयुत महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी० ए०

[आप का जन्म इलाहाबाद जिले की तहसील हंडिया के रविसौली ग्राम में १८ अक्टोबर सन १८८७ को हुआ था। आप हिन्दी के पुराने प्रसिद्ध लेखक हैं। हिन्दी की बड़ी बड़ी पत्रिकाओं में आपकी अनेक लेख मालाएँ निकल चुकी हैं। आप अधिकतर ज्योतिष पर लिखते हैं। यही आपका प्रिय विषय है। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ दो हैं। एक का नाम है विज्ञान प्रवेशिका, दूसरा भाग और दूसरी का सूर्य सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य। पिछली पुस्तक के ५ खण्ड ११००० पृष्ठों में छप चुके हैं। छटा खण्ड तथा भूमिका अभी बाकी है। आप इस समय गवर्नमेंट हाई स्कूल बलिया, में प्रधान अध्यापक हैं।]

इच्छा होती है कि देश में और संसार में क्या हो रहा है, जितनी कि पढ़े लिखे नगर-वासियों की होती है। यहाँ की भाषा में जब पहले पहल विज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तकें सस्ती सस्ती छपीं तब नगर निवासियों से अधिक देहातियों ने ही इनको खरीदा। पार्लामेंट में स्थान चाहने वाले सदस्यों से देहात में ही भाँति भाँति के रहस्य के प्रश्न पूछे जाते हैं और वहीं के रहने वाले इनके कामों को बड़ी सावधानी से देखते रहते हैं और किसी अनुचित काम पर आलोचना करते हैं।

डेनमार्क के गाँवों में ऐसा कोई घर नहीं है, जहाँ समाचार-पत्र और पुस्तकें न मिलती हों और ऐसा कोई किसान नहीं है जो इँग्लैंड और उपनिवेशों के सम्बन्ध में ब्रिटिश मजदूरों से अधिक जानकारी न रखता हो। बोअर-युद्ध के समय मैं डेनमार्क में था। उस समय मुझ से मालूम नहीं कितनी बार यह पूछा गया, कि इस युद्ध का क्या कारण है। एक बूढ़ी स्त्री के मुँह से यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यदि* आलिवर क्रामवेल जीवित होते तो यह युद्ध न छिड़ने पाता। विज्ञान और राजनीति में ही यहाँ के किसान प्रेम नहीं दिखाते वरन् इतिहास, साहित्य और जनश्रुति में भी नगर निवासियों से अधिक रुचि दिखाते हैं। इन देहातियों की इस जिज्ञासा-

* 'आलिवर क्रामवेल'—इँग्लिस्तान के एक प्रसिद्ध जनरल जिन्होंने वहाँ के राजा प्रथम चार्ल्स को गद्दी से हटाया था।

और जो इतना बड़ा होता है कि गाँव के सभी अवस्था के पुरुष स्त्री इसमें सुखपूर्वक बैठ सकते हैं। सभा भवन के एक किनारे एक चबूतरा होता है, और दूसरे किनारे वाचनालय और पुस्तकालय। कहीं कहीं वाचनालय और पुस्तकालय के लिए अलग कमरे रहते हैं। डेनमार्क के देहाती इस बात का बड़ा ध्यान रखते हैं, कि सब के पढ़ने लायक समाचार पत्र ही नहीं वरन् साप्ताहिक और समालोचन पत्र और पत्रिकाएँ तथा पुस्तक भी मिल सकें। यह बात भी नहीं है कि ये लोग पुस्तकालय की पुस्तकों पर ही भरोसा रक्खें। वे अपने पास से भी पुस्तकें मँगा मँगा कर पढ़ते हैं और यदि निर्धन हुए तो कई मिलकर किसी पुस्तक या समाचार-पत्र को मँगाते हैं और बारी बारी से पढ़ते हैं।

जिस गाँव का प्रबन्ध उत्तम हुआ वहां के मिलन मन्दिर में पढ़ने लिखने और गपशप के सिवा कोई न कोई ऐसा काम भी होता है जिसमें सारे गाँव के निवासी सम्मिलित होते हैं। जाड़े के महीनों में, सप्ताह में कम से कम एक दिन, सन्ध्या के समय, गाँव भर के युवक शारीरिक उन्नति के लिए इकट्ठे होते हैं। यहाँ एक अवैतनिक पहलवान सब को तरह तरह की कसरत सिखलाता है। सप्ताह में एक दिन बालक, युवा, वृद्ध, नर, नारी व्याख्यान सुनने के लिए आते हैं। महीने में दो

यह होता है कि नवीन अनुभव की बातें किसानों को बतलाता रहे और अपने कर्मचारियों को देहातों में इसलिए भेजता रहे कि जो बात लोगों की समझ में न आवे उसे वे अच्छी तरह समझा दें।

इन मिलन मन्दिरों, कृषि सुधारणी समितियों तथा व्याख्यानों से ही डेनमार्क के गांवों में जैसी आदर्श उन्नति होनी चाहिए, होती है, परन्तु वहां के निवासी इतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहते। किसान लोग हाई स्कूल और कृषि विद्यालय से भी काम लेते हैं। डेनमार्क की कुल जन-संख्या तीस लाख है, जिसके लिए ७५ हाई स्कूल हैं। उनमें किसान ही नहीं, वरन् किसानों की सहायता करने वाले मजदूर भी जाड़े के दिनों में जब कुछ काम काज नहीं रहता इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र राजनीति, स्वास्थ्य विज्ञान और अन्य उपयोगी बातें सीखते हैं। प्रतिवर्ष दस सहस्र शिक्षार्थी जिनमें एक तिहाई मजदूर होते हैं, फुरसत के महीनों में हाई स्कूलों में जाते हैं। ये जब पढ़कर अपने अपने गांवों को लौटते हैं, तब जो कुछ नई नई बातें सीखते हैं उनको व्याख्यानों और वाग्वर्द्धिनी सभाओं-द्वारा गांव वालों को सिखाते हैं। इन वाद विवादों से डेनमार्क के किसानों को बड़ा लाभ होता है। इनसे उनकी बुद्धि तीव्र ही नहीं होती, वरन् उनका ऐसी बातों से भी प्रेम हो जाता है जिनका उनसे विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह याद रखना

गिरजाघरों में बड़े ही मनोहर धर्मोपदेश देते, धुरन्धर राजनीति विशारद गाँव के मैदानों में दिल को फड़का देने वाले व्याख्यान सुनाते, पुराने इतिहासों में नामी नामी गायक और बजैया सङ्गीत, नाटक और देश भक्ति की कविताओं द्वारा लोगों के चित्त को लुभाते और अपने पुरखों के वीर कर्मों की प्रशंसा द्वारा दिखलाते कि मनुष्य क्या कर सकता है और हम लोगों को आगे क्या करना चाहिए। सप्ताह में कम से कम एक दिन प्रत्येक गाँव में इस तरह का जमाव हुआ करता था। इसमें लोगों के मन बहलाने का ही ध्यान नहीं रक्खा जाता था, कुछ ऐसी चर्चा भी होती थी जिसमें किसान स्वयं कुछ सोचें और विचारें, एक पथ दो काज हो, उनका मन भी बहले और शिक्षा भी मिले। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में किसान भाइयों को पढ़ने लिखने की चाट पड़ गई, जिससे पुस्तकों की माँग खूब ही बढ़ी और व्याख्याताओं से तरह तरह के प्रश्न करने का हियाव पड़ने लगा, देश तथा संसार की बात जानने के लिए मिलन मन्दिर की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसे अपने खर्च से बनवा कर अथवा किराये पर लेकर वाचनालय तथा पुस्तकालय का प्रबन्ध किया जाने लगा, किसानों में जागृति होने से मण्डली का उद्देश्य पूरा हो गया। अब केवल इस बात की कमी थी कि कुछ समय तक यह काम ऐसे ही होता रहे। [illegible] डेनमार्क के देहाती

३६

कृष्ण-चरित

लेखक—प्रोफ़ेसर शिवाधार पाण्डेय

[आपका जन्म ९ फरवरी सन् १८८८ को बुलन्दशहर में हुआ था। इनका निवास स्थान पुराना फीलखाना बाजार कानपुर है। आपने एल० एल० बी० पास करने के बाद कोई तीन वर्ष तक वकालत की। आजकल आप इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में अँगरेजी के रीडर हैं। अँगरेजी पर तो आपका अधिकार है ही, पर आप हिन्दी के भी अच्छे मर्मज्ञ हैं। आप कविता भी करते हैं।]

घनघोर घटा से घिरी हुई है, चारों ओर भयावना जङ्गल है, सिंह

लिया है। देश की सत्ता का नाश होने से भविष्य भयावने रूप का हो गया है।

ऐसी दशा में, ठीक अर्द्ध रात्रि के समय, उस जाज्वल्यमान ज्योति का आविर्भाव हुआ जो सर्वकाल से स्थिर है और सर्वकाल तक स्थिर रहेगी। उसी ज्योति की जगमगाहट के एक कण मात्र प्रकाश का आज, यहाँ पर, थोड़ा बहुत दर्शन करना है।

हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम उन क्षुद्र लोगों की बातों पर यहाँ ध्यान दें, जो इस दिव्य जीवन को जानने और समझने के स्थान में, उसकी व्यर्थ की बुराइयाँ कर पाप अपनी मूर्खता दिखाते हुए, अपने माथे पर मढ़ते हैं। कृष्ण का जीवन जितना ही उच्च है, उतना ही कुछ लोग उसे नीच करने का प्रयत्न करते हैं। एक की राय में कृष्ण गुजरात का एक चतुर राजा था जिसको अन्त में एक बहेलिए ने मार डाला, परन्तु महाराज गायकवाड में और श्रीकृष्ण में अनन्त अन्तर है। दूसरों की राय में कृष्ण एक धार्मिक नेता थे, जिन्होंने हत्या को उचित बतलाया और भारत में आलस्य का आधिक्य किया। कहना नहीं होगा कि भगवान् कृष्ण की दिव्य शिक्षा से ये लोग मुँह मोड़कर आँख-कान मूँदे हुए हैं। तीसरे लोगों की घृणित राय में कृष्ण एक मनमौजी गोप पुरुष थे, जिन पर उन्होंने संसार भर के दोषों

परीक्षित की जब गर्भ में भगवान् ने रक्षा की थी, तब किस प्रभाव से ?

उन्हों ने कहा—"यदि मैंने हँसी में भी कभी झूठ नहीं कहा है, यदि मैंने युद्ध में कभी पीछे पैर नहीं दिया है, यदि न कंस और केशी को धर्मपूर्वक मारा है, यदि मैंने अपने मित्र अर्जुन का कभी स्वप्न में भी विरोध नहीं किया ; यदि धर्म और ब्राह्मणगण मुझको सर्वदा प्यारे रहे हों, तो ह बालक जीवन को प्राप्त हो ।

यथा सत्यञ्च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।

तथा मृतः शिशुरयं जीवतामभिमन्युजः ॥

'यदि मुझ में सत्य की बराबर प्रतिष्ठा है धर्म की बराबर प्रतिष्ठा है, तो यह मृत बालक, अभिमन्यु का पुत्र, जीवन को प्राप्त हो।'

तप और तेज की शक्ति से क्या नहीं हो सकता ? तामसिक दिवस में चाहे जितना अन्धकार प्रतीत हो, परन्तु उस अनुपम आत्म-ज्योति ही से प्रकृति में प्रकाश होता है। श्रीकृष्ण के इस कर्म के समान हमारे महर्षियों के अनेक उदाहरण वर्तमान हैं। इससे उसमें कुछ आश्चर्य नहीं । परन्तु, वैसे देखिए तो भगवान् कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन ही आश्चर्यमय है। भागवत धर्म के प्रवाह से भारतवर्ष में जो भक्ति की अपूर्व धारा बही है, उस में जिस भक्त को देखिए वही उनके उस चरित्र को

यह उसका दोष है या सुवर्ण का? यदि शैतान को भी इञ्जील पढ़ाई जाय, और वह उससे भी अपना ही मतलब निकाले, तो यह शैतान का दोष है या इञ्जील का? कहा है, 'पय पान भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्' अर्थात् भुजङ्ग को दूध पिलाने से उसके विष ही की बढ़ती होती है। देश ऐसे ही भयानक भुजङ्ग भक्तों ने भारतवर्ष में अपना विष फैलाया है। यदि ऐसा न होता, तो धर्म के नाम से इतने अधर्मी पाप क्यों फैलाते फिरते?

कृष्ण का चरित्र! संसार में उससे बढ़ कर दूसरा चरित्र मिलना कठिन है। परन्तु कलङ्क किसको नहीं छूता? कलङ्क कृष्ण को भी लगा था। सत्राजित की स्यमन्तक मणि के बारे में उनके सारे कुटुम्बियों ने उन पर सन्देह किया था, यहाँ तक कि उनके दूसरे शरीर दूसरे हृदय, बड़े भाई बलराम भी उन से रूठ कर द्वारिका छोड़ बैठे थे। परन्तु असत्य असत्य ही है, सत्य सत्य ही है। तब, कलङ्क का नाम सुनते ही किसी को एकाएक घबड़ा न उठना चाहिए परन्तु उसकी पूरी जाँच करनी चाहिए, जैसी कृष्ण ने प्रसेन की मृत्यु की की थी।

सांसारिक भाव देखो। कृष्ण क्या नहीं थे? पहले दर्जे के राजनीतिज्ञ—'न कूटनीतिरभवत् श्रीकृष्णसदृशय पुरा'—शुक्राचार्य जी कह गए हैं कि 'श्रीकृष्ण के समान नीति में चतुर कोई नहीं हुआ।' महावीरों के महावीर भीष्म पितामह ने राजसूय यज्ञ में एकत्र हुए राजाओं से कहा था कि मैं तुम में से एक

के राजा लोग इन्द्रप्रस्थ में एकत्र हुए थे, भगवान् कृष्ण पैर धोने के लिए नियुक्त किए जाने में नहीं शरमाये—नहीं, नहीं, अपने आपको ही उन्होंने नियुक्त किया। अर्घ्य के अवसर पर गुरु वृद्ध भीष्म पितामह ने उनका वर्णन यों किया—

'ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़ाई होती है। क्षत्रियों में बल से। गोविन्द की पूजा के दोनों कारण उपस्थित हैं।'

वेद वेदाङ्गविज्ञानं बलञ्चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥

'वेदवेदाङ्ग और विज्ञान में अधिक होने से और बल में भी अधिक होने से मनुष्यों के लोक में, केशव को छोड़कर दूसरा ऐसा कौन है जो विशिष्ट कहा जाय?'

'दान दाक्षिण्य, श्रुति, वीर्य, लज्जा, कीर्ति, बुद्धि, सन्तति, श्री, धृति तुष्टि पुष्टि, सब अच्युत ही में स्थित हैं।'

कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चयिष्यन्ति ये नराः।
जीवनमृतास्तु ते ज्ञेया न सम्भाष्याः कदाचन॥

'कमल-दल के से नेत्रोंवाले कृष्ण की जो पुरुष पूजा न करेंगे उन्हें जीवन्मृत जानना चाहिए और उनसे बात न करनी चाहिए।'

केवल यही नहीं, वे सङ्गीत विद्या में निपुण थे—मुरली मनोहर उनका नाम है। वे रास में कुशल थे—उनका नटवर वेष मशहूर है। वे कविता में अद्वितीय थे, उनके दिव्य गीत भगवद्गीता की तरङ्गें अनन्त समय तक उठेंगी। पौरुष का

सेनाएँ क्षत्रियत्व की सच्ची शिक्षा को, सच्चे धर्म को, कभी की तिलाञ्जलि दे चुकी थीं। देश रसातल को जा रहा था। श्रीकृष्ण ने पहले अनार्यों पर आक्रमण किया। उत्तर में नरक और दक्षिण में बाण—यही दोनों उन लोगों में उस समय विशेष बलशाली थे। कृष्ण ने उत्तर जाकर नरक का उसके देश प्राग्जोतिष (भूटान) में वध किया। फिर दक्षिण में उन्होंने बाण को हराकर उसकी कन्या उषा का विवाह अपने पोते अनिरुद्ध के साथ होने दिया। उसके पुत्र प्रद्युम्न का विवाह मायावती से हुआ था, जो अनार्य असुर शम्बर ही के अधिकृत देश में प्रकट हुई थी। शम्बर का नाश प्रद्युम्न ने स्वयं किया था और यह शम्बर छल के लिये अकेला ही था। शाम्बरी माया अब तक प्रसिद्ध है।

परन्तु क्रूर अनार्य लोगों का बल इस समय बहुत क्षीण अवस्था में था, असली डर तो देश को अनार्य प्रकृति वाले आर्य राजाओं ही से था। नरक ने हजारों कन्याएँ अपने किले में कैद कर रक्खी थीं। (कृष्ण के सोलह हजार कन्याओं के साथ विवाह करने की कथा महाभारत में नहीं मिलती) परन्तु जरासन्ध ने, जो मगध का चन्द्रवंशी राजा था, छियासी राजाओं को (भागवत में यह 'अयुते द्वे शतान्यष्टौ' कहे गये हैं) जीतकर पहाड़ की गुफा में कैद कर रक्खा था, कि अगर वह सौ राजाओं को जमा कर ले, तो उन सब का बलिदान शिवजी को कर देगा। साथ ही साथ जरासन्ध ब्राह्मणों का

में श्रीकृष्ण को यदि भारतवर्ष का उद्धार करना था, तो बहुत शीघ्र। उन्होंने धमराज युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने का उपदेश कर भीम के द्वारा जरासन्ध का कौशल से नाश करवाया, और शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा करने पर भी अपनी प्रकृति प्रेरणा से वह स्वयं उनकी तेजोऽग्नि में पतङ्ग की भांति कूद पड़ा।

इसके पीछे जब श्रीकृष्ण ने देखा कि कौरव लोग भी किसी प्रकार सुधरने वाले नहीं हैं, अव्वल दर्जे के अधर्मी और दुराचारी हैं, जिनके प्रचण्ड पाप पूर्ण प्रताप के आगे भीष्म और द्रोण ऐसे बड़े बड़े विश्वविजयी सरदारों को, विदुर और सञ्जय ऐसे बड़े बड़े राजनीति विशारद, राजवल्लभ महामन्त्रियों को चुप चाप सिर झुकाए भरी सभा में शकुनि के कपट द्यूत और द्रौपदी के चीर-हरण सदृश दारुण दृश्यों को विवश होकर देखना पड़ा था, तो उन्होंने महाभारत को भी रोकना पसन्द नहीं किया, और उस अथाह सग्राम रूपी सागर में भारत भर का क्षत्रियत्व गोता खा गया। श्रीकृष्ण ने देश के कल्याण के लिए सारा पक्षपात छोड़ कर जिस प्रकार पाण्डवों से कौरवों का वध कराया था, उसी प्रकार अपने उद्दण्ड कुटुम्ब का नाश कराया। धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य-मार्ग में देश हित को कोई बाधा न खड़ी होने दी। यदि पृथ्वी पर कलि-काल को आना था, तो श्रीकृष्ण ने पुरानी सारी बुराइयों को दूर कर, दूषित रुधिर का रुधिर की धारा द्वारा बहा कर, मनुष्यों को फिर

तौर पर दे गए थे, यदि उन में उनसे लाभ उठाने की बुद्धि होती।

सच तो यह है कि जिस प्रकार परशुराम से बाद ह्रास के बाद मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का चरित्र देख कर भारतवर्ष ने फिर से रत्न धारण कर लिया था, उसी प्रकार महाभारत के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के आदर्श से उसने फिर बुद्धि नहीं ली। यह कलिकाल के प्रभाव और मनुष्यों की दुर्बलता का परिणाम है, श्रीकृष्ण पर इसका दोष लगाना वृथा है। उन्होंने एक सिरे से एक बार फिर देश को नया कर दिया। धर्मराज्य स्थापित कर, धर्म का उपदेश कर स्वयं धर्म का मार्ग बतला दिया। यदि भारतवर्ष ने श्रीकृष्ण के उस सरल निसर्ग धर्म मार्ग तथा कर्म-मार्ग से लाभ नहीं उठाया, तो देश का दोष है, श्रीकृष्ण का नहीं।

श्रीकृष्ण ने धर्म का क्या मार्ग बतलाया— इस प्रश्न का उत्तर देना श्रीकृष्ण के जीवन के सच्चे तात्पर्य का ज्ञान देना है। उपनिषदों में जिन को 'कृष्ण देवकीपुत्र' कहा है, यह वही थे जिन्होंने एक बेर कलिकाल में गोता खाते हुए, आलस्य और विलासिता में डूबते हुए, मनुष्यों की आत्मा को फिर से नया कर देना चाहा। उनका उपदेश ऐसा था कि वह मुर्दे से भी मुर्दे मनुष्य को एक बार जीता जागता बना कर ही छोड़े। यह उपदेश 'भगवद्गीता' अर्थात् भगवान् का गीत है।

चाहिए, आत्मा कभी नहीं मरती अथवा नाश होती—फिर सोच काहे का ? दुःख और क्लेश उसको जरा भी नहीं व्याप्त होते। मनुष्य की आत्मा का नाश नहीं होता, उसका जीवन अनन्त है। प्रत्यक्ष में, मनुष्य संसार में मर जाता है, परन्तु असल में बराबर जीता रहता है। मनुष्य को चाहिए कि वह इसी असल अवस्था में हमेशा रहे। इस संसार के जीवन को ही अपना असली जीवन न मान बैठे। प्रश्न यह है कि उस सच्चे असली जीवन को मनुष्य किस प्रकार प्राप्त कर सकता है (क्योंकि वही मोक्ष, कल्याण और निर्वाण है)। देखना चाहिये कि वह सच्चा जीवन इस संसार का झूठा जीवन कैसे हो जाता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं—माया के कारण। माया कैसे पैदा होती है ? कर्मों से। मनुष्य कर्म करता है, उसका फल होता है, उन फलों को वह भोगता है, दुःख सुख जो कुछ हो, उसे भोगना होता है। वह अपना समय इस झूठे स्वर्ग नरक संसार में बिताता फिरता है। इसी से इस माया का, इस झूठे संसार का, और इस झूठे जीवन का अन्त नहीं होता। यदि माया छूट जाय, तो इससे भी छुटकारा मिल जाय और मोक्ष हो जाय।

माया कैसे छूट सकती है ? श्रीकृष्ण ने कहा है कि कर्मों से। कर्मों ही में वह पैदा होती है, और कर्मों ही से वह नाश भी होती है। पर कैसे कर्मों से ?—निष्काम कर्मों से। यही

सरल रास्ता है, यही भगवान् की शिक्षा है । कलिकाल में सीधा रास्ता बतलाये जाने की जरूरत थी इसीलिए भगवान् का अवतार हुआ था और उन्होंने रास्ता बतला दिया ।

माया नाश करने के और भी रास्ते हैं। भक्ति, ज्ञान और कर्म ये तीनों मार्ग श्रीकृष्ण ने दिखलाये हैं, तीनों की प्रशंसा की है, और तीनों का आपस में सम्बन्ध बतलाया है । किस सीढ़ी से मनुष्य कितनी दूर पहुँचता है और किस मार्ग से उसको कम कठिनाई होती है, यह भगवान् के उपदेश से प्रकट होता है । परन्तु सब से सरल मार्ग या सीढ़ी निष्काम कर्म ही की है, यह श्रीकृष्ण का सबसे बड़ा सन्देश है ।

निष्काम कर्म के विषय में श्रीकृष्ण का यह भी उपदेश है—यदि मनुष्य में निष्ठा है, तो वह संसार से—सब भूतों से—प्रेम करेगा, यदि उसको सब जीवों से प्रेम होगा, तो उसको प्रकृति से प्रेम होगा, यदि प्रकृति से प्रेम होगा तो प्रकृति की आत्मा से भी होगा, यदि प्रकृति की आत्मा से प्रेम होगा तो वह परमात्मा पर भरोसा रक्खेगा । यदि परमात्मा पर भरोसा रक्खेगा, तो उसके कर्म भी निष्काम होंगे । निष्काम कर्मों से माया का नाश होगा, भव सागर से मोक्ष होगा, सच्चा जीवन प्राप्त होगा ।

गीता में ऐसे ऐसे भाव हैं, जो सारे संसार को एक करते हैं । मनुष्य मात्र भगवान् के सामने बराबर हैं—यही शिक्षा इन श्लोकों की शुद्ध ध्वनि द्वारा दी गई है ।

गीता से बढ़कर हित-कर उपदेश हमको कहाँ मिलता है।

यदि संसार ने भगवद्गीता से पहले पूरा लाभ नहीं उठाया, तो अब उठाने को तैयार हो रहा है। धीरे धीरे पूर्व पश्चिम, योरप अमरिका चारों ओर इस अमूल्य रत्न का प्रकाश फैल रहा है, और मनुष्य मात्र अपने सच्चे जीवन का ज्ञान रहा है।

हम हिन्दू लोग मानते हैं और स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'

'जब जब धर्म का क्षय और अधर्म का अभ्युदय होता है, तब तब हे अर्जुन! मैं अपने को सृजता हूँ। यह भगवान का वचन है। जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम के दो अक्षर के 'राम' नाम ही को हम परमेश्वर का नाम मानते हैं, वहाँ कृष्ण को हम कोई विशेष नाम लेकर भी नहीं पुकारते। केवल 'भगवान्' ही कहते हैं। उनके लिए यही नाम यथार्थ है। भगवान् ही से सब कुछ है।

यत्र सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः॥

"जहाँ सत्य है, धर्म है, लज्जा है, सीधापन है, वहाँ ही भगवान् पाये जाते हैं। जहाँ भगवान् हैं वहाँ ही जय होती है।"

भगवान् कृष्ण ने जय का—संसार जय का—सीधा, सरल रास्ता बतलाया है। फिर क्यों न कहें?—

अधिक प्यार करते थे कि उन्होंने बारम्बार "मम प्राणों प्रियतर"—'हमारे प्राणों से भी प्यारे'—कह कर भरत का उल्लेख किया है। कौशल्या से रामचन्द्र ने कहा था—"धर्म-प्राण भरत की बात देख कर तुम्हें अयोध्या छोड़ने में हम कुछ भी चिन्ता नहीं होती।" पर इन रामचन्द्र ने भी भरत पर सन्देह का एक बाण न छोड़ा हो, ऐसा नहीं है। उन्होंने सीता से कहा था—"तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना, क्योंकि ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सुनना चाहता।" यह सन्देह क्षमा नहीं किया जा सकता। पिता दशरथ ने भी रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय भरत को सन्देह की दृष्टि से देखा था। उन्होंने राम को बुला कर कहा था—"हम चाहते हैं कि मामा के यहाँ भरत के रहते रहते ही तुम्हारा अभिषेक हो जाय, क्योंकि यद्यपि भरत धार्मिक और तुम्हारे पीछे पीछे चलने वाला है, तथापि मनुष्य का मन विचलित होते कितनी देर लगती है।" इक्ष्वाकु-वंश की परम्परागत प्रथा के अनुसार राजसिंहासन बड़े भाई ही को मिलता है, तो फिर ऐसी दशा में धार्मिकाग्रगण्य भरत पर ऐसा सन्देह करना मार्जनीय नहीं हो सकता। रामचन्द्र भरत के चरित्र की महिमा इतनी जानते थे तो भी वनवास के अन्त में भरद्वाज के आश्रम में उन्होंने हनुमान को यह कह कर भरत के पास भेजा कि 'हमारे आने की खबर सुन कर भरत के मुख पर कुछ विकार होता है या नहीं, यह अच्छी तरह

हुई। दैव के चक्र में पड कर दधीचि के समान चरित्र सम्पन्न भरत सारे संसार के सन्देह-भजन हो लाञ्छित हुए। जब वे रामचन्द्र को मनाने के लिये बहुत सी सेना लेकर जा रहे थे, तब निषादों का राजा गुह मन में यह विचार कर कि ये रामचन्द्र का अनिष्ट करने के लिए जाते हैं, हाथ में लट्ठ लेकर रास्ते में खड़ा हो गया। यहाँ क्या भरद्वाज ऋषि तक ने भय की दृष्टि से देखते हुए उन से यह पूछा—'आप उस निष्पाप राजपुत्र के पास कोई पाप विचार कर तो नहीं जाते हैं?' इस प्रकार हर पद का समाधान करते करते भरत के प्राण कण्ठगत हो गये। भरत कैकयी को 'मातृरूपे महामित्रे' कह कर सम्बोधन करते थे। वास्तव में कैकेयी माता के रूप में उनकी बड़ी भारी शत्रु ही थी। सारे संसार का भरत पर जो सन्देह की दृष्टि का विष-बाण गिरता था, उसका मूल कारण कैकेयी ही थी।

किन्तु घटनावली कितना ही जटिल भाव क्या न धारण करे, पर भरत के अपूर्व भ्रातृ स्नेह ने सारी जटिलता को सहज कर दिया था। रामचन्द्र को हमने अनेक अवस्थाओं में सुखी होते देखा है। जिस समय चित्रकूट की पुष्प वाटिका की शोभा और टूटे फूटे पत्थरों के टुकड़ों से छाई हुई अधित्यका भूमि में अधिष्ठित पर्वत के शिखर और रंग बिरंगे फूलों को देख कर रामचन्द्र ने सीता से कहा—"इस स्थान पर तुम्हारे

'हे महाबाहो, आप जिनकी कुशल पूछते हैं, वे सकुशल हैं।' किन्तु पिछली रात को बुरा स्वप्न और दूतों की व्यग्रता ये दोनों उन्हें एक समस्या के समान समझ पड़े। इन दो घटनाओं को दुश्चिन्ता के सूत्र में बाँध कर वे अत्यन्त दुःखी हुए।

बहुत से स्थान, नदी नाले और झाड़ियाँ पार करके भरत दूर ही से अयोध्या की चिरश्यामल वृक्षावली को देख सकते थे और डरी हुई जबान से उन्हों ने सारथी से पूछा—"अयोध्या सी तो नहीं मालूम होती। इस नगरी का यह चिरश्रुत तुमुल शब्द क्यों नहीं सुनाई पड़ता ? वेदपाठी ब्राह्मणों का कण्ठस्वर और काम में लगे हुए स्त्री पुरुषों का कोलाहल भी बिलकुल नहीं सुनाई देता। जिन प्रमोद-उद्यानों में स्त्री पुरुष अकेले विचरते थे, वे आज सूने पड़े हैं। सड़कें चन्दन और जल के छिड़काव से पवित्र नहीं होतीं। सड़कों पर रथ, हाथी, घोड़े कुछ भी नहीं हैं। जिसके सब दरवाजे खुले हैं, ऐसी श्री-हीन राजपुरी मानों व्यग्य कर रही है। यह तो अयोध्या नहीं है, मानो अयोध्या का वन है।"

वास्तव में अयोध्या श्री-हीन हो गई थी। रामचन्द्र रूपी चन्द्र के बिना अयोध्या के सुन्दर बाजारों की शोभा बिलकुल नष्ट हो गई थी। तीनों लोकों में यशस्वी महाराज दशरथ ने पुत्र शोक में अपने प्राण त्याग दिए थे। अभिषेक के उत्सव से आनन्दित बड़े राजकुमार मुनियों के वेष में वन को चले

"या गति सर्वभूताना ता गति त पिता गत ।"

'सब प्राणियों की जो गति होती है, वही गति तुम्हारे पिता की हुई है।' इस समाचार को सुन कर कुठार से काटे गए वन वृक्ष की तरह भरत पृथिवी पर गिर पड़े।

'ध स पाणि सुखस्पर्शस्तातस्या क्लिष्टकर्मण ।'

'अक्लिष्टकर्मा पिता के हाथ का स्पर्श का वह सुख अब कहां मिलेगा?' यह कह कर भरत रोने लगे। राजा के बिना राजशय्या उन्हें चन्द्रमा के बिना आकाश के समान दिखाई पड़ी। उन्होंने कैकयी से कहा—"राम कहा है?' इस समय पिता के न होने पर जो हमारे पिता, जो हमारे बन्धु और मैं जिनका दास हूँ—उस रामचन्द्र के दर्शन के लिए हमारा प्राण व्याकुल हो रहा है।" राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास हुआ सुन कर भरत क्षण भर के लिए मूर्ति के समान खड़े रह गए और भाई के चरित्र में आशंका करते बोले—"राम ने क्या किसी ब्राह्मण का धन छीन लिया था? क्या उन्होंने दीन-दुखिया को सताया था? अथवा परस्त्री में आसक्त हो गये थे, जिसमें उन्हें निर्वासन का दण्ड मिला?" अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कैकयी ने कहा—

'न राम परदारान् चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।'

'रामचन्द्र पराई स्त्रियों को आंखों से भी नहीं देखते।'

भरत का चेहरा कुम्हला गया और वे अपने को बारम्बार कोसने और दोषी ठहराने लगे। जोर से बोलने और दारुण शोक के कारण व मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े। करुणामयी अम्बा कौशल्या उममीन कुमार के मन के भाव को समझ गई और उन्हें गोद में उठा कर रोने लगी।

भरत का शोक और उदासीनता क्रम से बढ चली। श्मशान भूमि में मृत पिता के गले से लग कर वे रोते रोते बोले—'हे पिता, अपने दोनों प्यारे पुत्रों को वन भेज कर आप कहाँ जाते हैं?' सजल नेत्र और शोकविमूढ राजकुमार को वशिष्ठ ने ताड़ना कर के पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करने में प्रवृत्त किया। शोक विह्वल हो कर भरत एक बेर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

प्रात काल वन्दीजन भरत की स्तुति गाने लगे। उस समय भरत ने पागलों की तरह दौड़ कर उन्हें मना कर दिया—'इक्ष्वाकु-वंश की प्रथा के अनुसार सिंहासन बड़े राजकुमार को मिलता है। तुम किस की वन्दना कर रहे हो?' राजा की मृत्यु के चौदहवें दिन वशिष्ठ आदि मन्त्रियों ने भरत से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। भरत बोले—'रामचन्द्र राजा बनेंगे। हम अयोध्या की सारी प्रजा को लेकर उन्हें पैरों पड कर मना लायेंगे। यदि वे न लौटें, तो हम भी चौदह वर्ष वन में रहेंगे।'

शत्रुघ्न मन्थरा को मारने और कैकेयी को ताड़ना देने लगे,

के योग्य नहीं है। हम क्या मुँह लेकर राजछत्र धारण करेंगे? भोग विलास की वस्तुओं से हमें प्रयोजन नहीं। हम आज ही से जटा-वल्कल धारण करेंगे, भूमि पर सोवेंगे और फल फूल खा कर अपना जीवन व्यतीत करेंगे।'

इस प्रकार जटा वल्कलधारी शोकविमूढ़ राजकुमार भरद्वाज मुनि के आश्रम में आ कर रामचन्द्र का पता लगाने लगे। सर्वज्ञ ऋषि ने भी पहले सन्देह प्रकट कर भरत के मन को पीड़ा पहुँचाई थी। एक रात्रि भरद्वाज के आश्रम में आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर मुनि के निर्देशानुसार राजकुमार ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। भरद्वाज ने भरत के डेरों में आ कर रानियों को देखना चाहा। भरत ने इस प्रकार माताओं का परिचय दिया—'भगवन्, यह जो शोक और निरादर से क्षीण देह, सौम्य मूर्ति और देवताओं की तरह दिखलाई पड़ती है, यह हमारे अग्रज रामचन्द्र की माता है। यह जो बायें हाथ का सहारा लगाए उदास खड़ी और वन में सूखे हुए कर्णिकार पुष्पों के पेड़ की तरह क्षीणाङ्गी है, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी सुमित्रा है। और उन के पास ही यह, जिस ने अयोध्या की राजलक्ष्मी को विदा कर दिया है, वह पति घातिनी और सारे अनर्थ की मूल, वृथा प्रज्ञामानिनी और राजकामुका इस अभागे की माता है।' यह कहते कहते भरत के दोनों नेत्रों से जल बहने लगा और क्रुद्ध सर्प की तरह

तुमुल शब्द से पशु पक्षी चारों ओर भागने लगे। रामचन्द्र ने त्रस्त हो कर लक्ष्मण से जिज्ञासा की—'देखो, क्या कोई राजा या राजपुत्र इस वन में शिकार खेलने आया है? अथवा किसी भीषण जन्तु के आने से इस सौम्य निकेतन की शान्ति इस प्रकार भङ्ग हो रही है?' लक्ष्मण शीर्षपुष्पित शाल वृक्ष पर चढ़ कर इधर उधर देखने लगे, तो उन्हें पूर्व दिशा में फौज दिखाई पड़ी। उसे देख कर वे बोले—'अग्नि बुझा दो, सीता को कहीं गुफा में छिपा दो और अस्त्र शस्त्र ले कर सुसज्जित हो जाओ।' 'किसकी फौज आ रही है? क्या कुछ समझ में आया?' लक्ष्मण ने इस प्रश्न का उत्तर दिया—'पास ही यह वृक्ष जो दिखाई पड़ता है उसके पत्तों में से भरत की कोविदारयुक्त * रथ की ध्वजा दिखाई पड़ती है। अभिषेक होने से उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। अपने राज्य की शोभा का निष्कण्टक करने के लिए भरत हम लोगों का वध करने के लिए आये हैं। आज हम इस सब अनर्थ के मूल भरत का वध करेंगे।'

रामचन्द्र बोले—'भरत हमें लौटाने के लिए आये हैं। सब बातों को अच्छी तरह जान कर हमसे सदा स्नेह करने वाले, हमारे प्राणों से भी प्यारे भरत स्नेहार्द्र हृदय से पिता को प्रसन्न कर हमें लेने के लिए आये हैं। तुम उन पर अन्याय करने का

* भरत की फौज के झंडे का निशान 'कोविदार' था।

और इस भरत को कठिनता से पहचाना। उन्होंने बड़े आदरपूर्वक भरत को जमीन से उठा लिया और उनके शिर को सूँघ और हृदय से लगा कर बोले—'वत्स, तुम्हारा यह वेश क्यों ? तुम्हें इस वेश से वन में आना उचित नहीं था।'

भरत बड़े भाई के चरणों में लेट गये और बोले—'हमारी जननी घोर नरक में गिर पड़ी है, आप उस की रक्षा कीजिये। मैं आप का भाई हूँ, शिष्य हूँ और दासानुदास हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हो अयोध्या चल कर सिंहासन पर बैठिये'। बहुत बातें हुईं और बड़ा तर्क वितर्क हुआ। राम बोले—'हम चौदह वर्ष तक वन में वास करेंगे। महाराज की प्रतिज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है।' जब राम को किसी प्रकार अयोध्या चलने के लिए राजी न कर सके, तो भरत अनशन व्रत धारण कर उनकी कुटि के द्वार पर धरना देकर पड़ गए। भूमि पर लोटे हुए भरत को रामचन्द्र ने आदरपूर्वक उठा कर अपनी पादुकाएँ प्रदान कीं। भाई के पद रज से विभूषित पादुकाएँ भरत के जटाजूट को शोभित कर उनके शिर पर मुकुट के समान देदीप्यमान हो रही थीं। सहस्रों आभूषणों से जो शोभा नहीं आ सकती, इन पादुकाओं ने भरत को वही अपूर्व राजश्री प्रदान की। भरत ने विदा होते समय कहा—'चौदह वर्ष तक हम आप की प्रतीक्षा में इन पादुकाओं की आज्ञा लेकर राज्य का काम चलावेंगे। यदि इतने समय में आप नहीं आये, तो

करके बोले—'देव, आप हम अयोग्य के हाथ में जो राज्यभार छोड़ गए थे, उसे ग्रहण कीजिए। चौदह वर्ष में राजकोष में दस गुना धन बढ़ गया है।'

रामायण में यदि कोई चरित्र ठीक आदर्श समझ कर ग्रहण किया जा सकता है, तो वह एक मात्र भरत ही का चरित्र है। सीता ने लक्ष्मण से जो कटु वचन कहे थे, वह क्षमा के योग्य नहीं है। रामचन्द्र के बालि वध आदि अनेक कार्यों का समर्थन नहीं किया जा सकता। लक्ष्मण की बातें तो कई बार बड़ी रूखी और दुर्विनीत हुई हैं। कौशल्या ने दशरथ से कहा था—'कई जल जन्तु जिस प्रकार अपनी सन्तान भक्षण कर जाते हैं, तुमने भी उसी प्रकार किया है'। किन्तु भरत के चरित्र में एक भी दोष नहीं। रामचन्द्र की पादुकाओं पर स्वर्ण छत्र धारण करनेवाले जटा-वल्कल धारी इस राजर्षि का चरित्र रामायण में एक अद्वितीय सौन्दर्य धारण कर रहा है। दशरथ ने सत्य ही कहा था—

'रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्।'

'धर्म की दृष्टि से हम राम की अपेक्षा भरत को अधिक बलवान् समझते हैं।'

जब हम देखते हैं कि कैकेयी ऐसे सुपुत्र की गर्भधारिणी थी, तो हम उसके सहस्रों दोषों को क्षमा के योग्य समझते हैं। हम निषादाधिपति गुह के स्वर में स्वर मिला कर एक वाक्य

२६

रक्षा-बन्धन

लेखक—श्रीयुत विश्वम्भरनाथ कौशिक

[इन का जन्म सन १८९१ में अम्बाला छावनी में हुआ था, पर इन के दादा के भाई ने इन्हें गोद ले लिया। तब से आप कानपुर में रहते हैं। आप अँगरेज़ी, बंगाली, गुजराती और मराठी के अच्छे ज्ञाता हैं। आप हिन्दी के एक बहुत अच्छे उपन्यास लेखक हैं। 'माँ', चित्रशाला, भाग्य, संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियाँ आप की रचनाएँ हैं।]

[१]

'माँ मैं भी राखी बाँधूँगी।'

श्रावण की धूमधाम है। नगरवासी स्त्री पुरुष बड़े आनन्द

करके उसने पुत्री से कहा—'आ तुझे न्हिला (नहला) दूँ'।

बालिका मुख गम्भीर करके बोली—'मैं नहीं नहाऊँगी'।

माता—'क्या, नहावेगी क्या नहीं'?

बालिका—'मुझे क्या किसी के राखी बाँधना है'?

माता—'अरी, राखी नहीं बाँधनी है तो क्या नहावेगी भी नहीं? आज त्योहार का दिन है। चल उठ नहा'।

बालिका—'राखी नहीं बाँधूँगी तो त्योहार काहे का?'

माता—(कुछ क्रुद्ध होकर) 'अरी, कुछ सिड़न हो गई है। राखी राखी की रटन लगा रक्खी है। बड़ी राखी बाँधने वाली बनी है। ऐसी ही होती तो आज यह दिन देखना पड़ता। पैदा होते ही बाप को खा बैठी। ढाई बरस की होते होते भाई से घर छुड़ा दिया। तेरे ही कर्मों से सब नास (नाश) हो गया।'

बालिका बड़ी अप्रतिभ हुई और आखों से आसू भरे हुए चुपचाप नहाने को उठ खड़ी हुई।

× × ×

एक घण्टा पश्चात् हम उसी बालिका को उसके द्वार पर खड़ा देखते हैं। इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है। अब भी उसके बड़े बड़े नेत्रों में पानी छलछला रहा है।

परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्या खड़ी है? जान पड़ता है, वह किसी कार्यवश खड़ी है, क्योंकि उसके द्वार के

युवक समझ गया। उसने मुसकरा कर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

बालिका का मुख कमल खिल उठा। उसने बड़े चाव से युवक के हाथ में राखी बाँध दी।

राखी बँधवा चुकने पर युवक ने जेब में हाथ डाला और दो रुपए निकाल कर बालिका को देने लगा। परन्तु बालिका ने उन्हें लेना स्वीकार न किया। वह बोली—'नहीं, यह नहीं, यह नहीं, पैसे दो।'

युवक—'ये पैसे से भी अच्छे हैं।'

बालिका—'नहीं—मैं पैसे लूँगी, यह नहीं।'

युवक—ले लो बिटिया। इसके पैसे मँगा लेना। बहुत से मिलेंगे।

बालिका—'नहीं, पैसे दो।'

युवक ने चार आने पैसे निकाल कर कहा—'अच्छा, ले पैसे भी ले और यह भी ले।'

बालिका—'नहीं, खाली पैसे लूँगी।'

'तुझे दोनों लेने पड़ेंगे'—यह कह कर युवक ने बल पूर्वक पैसे तथा रुपए बालिका के हाथ पर रख दिए।

इतने में घर के भीतर से किसी ने पुकारा—'अरी सरसुती, (सरस्वती) कहाँ गई?'

बालिका ने 'आई' कह कर युवक की ओर कृतज्ञता पूर्ण

अमरनाथ—'उन्नाव भी अवश्य ही उतर होंगे' ?

घनश्याम—(एक ठण्डी साँस भर कर) 'हाँ उतरा तो था, परन्तु व्यर्थ । उसमें अब मेरा क्या रक्खा है' ?

अमरनाथ—'परन्तु करो क्या । हृदय नहीं मानता है—क्या ? और सच पूछो तो बात ही ऐसी है । यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो कदाचित् मैं भी ऐसा ही करता'।

घनश्याम—'क्या कहूँ मित्र, मैं तो हार गया । तुमतो जानते ही हो कि मुझे लखनऊ आकर रहे एक वर्ष हो गया और जब से मैं यहा आया हूँ मैंने उन्हें ढूँढने म कुछ भी कसर उठा नहीं रक्खी—परन्तु सब व्यर्थ' ।

अमरनाथ—'उन्होंने उन्नाव न जाने क्यों छोड़ दिया और कब छोड़ा—इस का भी कोई पता नहीं चलता' ।

घनश्याम—'इसका तो पता चल गया न, कि वे लोग मेरे चले जाने के एक वर्ष पश्चात् उन्नाव से चले गए । परन्तु कहा गये, यह नहीं मालूम' ।

अमरनाथ—'यह किससे मालूम हुआ' ?

घनश्याम—'उसी मकान वाले से जिसके मकान में हम लोग रहते थे' ।

अमरनाथ—'हा शोक' !

घनश्याम—'कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मों का फल है । यदि मैं उन्हें छोड़कर न जाता, यदि गया था

हैं। इस समय घनश्यामदास अपनी कोठी के बाग में मित्रों सहित बैठे मन्द मन्द शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। आपस में हास्यरस पूर्ण बातें हो रही हैं। बातें करते करते एक मित्र ने कहा—'अजी, अभी तक अमरनाथ नहीं आये'।

घनश्याम—'वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा'।

दूसरा—'नहीं रम नहीं, वह आज कल तुम्हारे लिए दुल-हिन ढूँढने की चिन्ता मे रहता है'।

घनश्याम—'बड़े दिल्लगी बाज हो'।

दूसरा—'नहीं दिल्लगी की बात नहीं।

तीसरा—'हां, परसों मुझ से भी वह कहता था कि घन श्याम का विवाह हो जाय तो मुझे चैन पड़े'।

ये बातें हो ही रही थीं कि अमरनाथ लपकते हुए आ पहुँचे।

घनश्याम—'आओ यार, बड़ी उमर—अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी'।

अमरनाथ—इस समय बोलिए नहीं, नहीं एक आध को मार बैठूंगा'।

दूसरा—'जान पड़ता है, कहीं से पिट कर आये हो?'

अमरनाथ—'तू फिर बोला—क्यों?'

है। और यहाँ उनका कौन बैठा है जो कहेगा ?'

घनश्याम ने ठण्डी साँस ली।

तीसरा—'आपने क्या भलाई देखी जो यह सम्बन्ध करता है ?'

अमरनाथ—'लड़की की भलाई। लड़की लक्ष्मी रूपा है। जैसी सुन्दर वैसी ही सरल। ऐसी लड़की यदि दीपक लेकर ढूँढी जाय तो भी कदाचित् ही मिले।'

दूसरा—'हाँ, यह अवश्य एक बात है।'

अमरनाथ—'परन्तु लड़की की माता लड़का देख कर विवाह करने को कहती है।'

तीसरी—'यह तो व्यवहार की बात है'।

घनश्याम—'और, मैं भी लड़की देख कर विवाह करूँगा'।

दूसरा—'यह भी ठीक ही है'।

अमरनाथ—'तो इसके लिए क्या विचार है' ?

तीसरा—'विचार क्या, लड़की देखेंगे'।

अमरनाथ—'तो कब' ?

घनश्यम—'कल'।

[४]

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चले। गाड़ी चक्कर खाती हुई अहियां

स्त्री की ओर कुछ अँधेरा था। इस कारण इन लोगों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पड़ता था। घनश्याम उसे उठाने को उठे। परन्तु ज्योंही उन्होंने उसका सिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी त्योंही घनश्याम के मुख से निकला—'मेरी माता'—और उठ कर वे भूमि पर बैठ गये।

अमरनाथ निश्चिन्त होकर काष्ठवत बैठे रहे। अन्त को कुछ क्षण उपरान्त बोले—उफ ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है। जिनके लिए तुमने न जाने कहां कहां की ठोकरें खाईं वे अन्त को इस प्रकार मिले'।

घनश्याम अपने को सँभाल कर बोले—थोड़ा पानी मँगाओ'।

अमरनाथ—किससे मँगाऊँ। यहां तो कोई और दिखाई ही नहीं पड़ता। परन्तु हां 'वह लड़की तुम्हारी'—कहते अमरनाथ रुक गए। फिर उन्होंने पुकारा—'बिटिया, थोड़ा पानी दे जाओ'।

परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा—'बेटी तुम्हारी मां अचेत हो गई है। थोड़ा पानी दे जाओ'।

इस 'अचेत' शब्द में न जाने क्या बात थी कि तुरन्त ही घर के दूसरी ओर बरतन खड़कने का शब्द हुआ। तत्पश्चात एक पूर्ण वयस्क लड़की लोटा लिए आई। लड़की मुँह कुछ ढके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता की

आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगाकर राखी बाँधी। घनश्याम ने दो अशर्फियाँ उसके हाथ में धर दीं और मुस्करा कर बोले—'क्या पैसे भी देने होंगे ?

सरस्वती ने हँस कर कहा—'नहीं, भैया, ये अशर्फियाँ पैसों से अच्छी हैं। इनसे बहुत से पैसे आवेंगे।



ञ

उस समय कुम्भ का मेला था। हजारों यात्री, सन्यासी प्रभृति वहाँ एकत्र हुए थे। अनन्त जन राशि से उस महातीर्थ का कलेवर आच्छादित था। पुण्य पीयूषवाहिनी भगवती जाह्नवी और यमुना का सगम! यमुना के कृष्ण जल का जाह्नवी के शुभ्र जल से मिलन! यह दृश्य बहुत ही सुन्दर तथा मनोरम था।

कुछ दिन तो शशिशेखर ने किसी न किसी तरह व्यतीत किए। नवीन स्थल पर नवीन दृश्य देख कर किस का हृदय पुलकित नहीं होता। शेखर ने बहुविधि सन्यासियों के साथ इतस्ततः परिभ्रमण करके मन को बहुत कुछ स्थिर किया। परन्तु यह स्थिरता कितने दिनों के लिए थी! शान्ति का फिर नाश हो गया। शशिशेखर अस्थिर चित्त से देश विदेश में परिभ्रमण करने लगे।

[३]

सुधा के हृदय मे भाव उठा—'उन्हें एक बार और देख पाती तो अच्छा होता। उनसे वियोग हुए बहुत दिन हो गए'। उस तैल चित्र के समक्ष बैठकर सुधा कहने लगी—'भगिनी! तुम जैसी भाग्यशीला ससार में अन्य है! तुमने पति के हृदय मन्दिर मे स्थान लाभ किया। मैं हत भागिनी हूँ जो तुम्हारा द्रव्य छीनने का प्रयत्न करती हूँ'।

सुधा और न बोल सकी। नयन मोचित अश्रुधारा से

क्षुत्पिपासा से भी वियोग हो गया। इस वियोग के कारण सुधा की सुन्दर लावण्यमयी देह की अत्युज्ज्वल कान्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। दलजना निर्जीव सी हो गई। तब पुत्र शोकातुरा माता ने कहा— 'चल, मैं तुझे वृन्दावन ले चलूँगी। मैं भी अपनी शेष अवस्था श्री गोविन्द के पादपद्म में अर्पित करूँगी'।

शैवलिनी बोली—'माता! अच्छी बात है। चलो, हम सब रवि को संग लेकर दादा को खोज। वे फिर न कहीं चले जायें। बहू भी पागल सी होती जाती है'।

वृन्दावन के लिए यात्रा स्थिर हुई। उसी दिन सन्ध्या को रविशेखर के साथ सब ने पुण्य तीर्थ वृन्दावन को गमन किया। जो घर सदा ही आनन्द लहरी से मुखरित होता था, वही आज निविड़ निस्तब्धता में परिणत हो गया।

[४]

नील-सलिला स्वच्छा यमुना आज नीरव स्वर से बह रही है। पर हाय! उस बाँसुरी का स्वर नहीं। इसी से आज यमुना उदास होकर बह रही है। जिस बाँसुरी के शब्द को सुन कर गृह-वासिनी गोपिकाएँ उदास हो जाती थीं, हाय यमुने! तुम्हारे तट पर से वह बाँसुरी का स्वर कहाँ गया? और आज महामाया राधारानी कहाँ हैं? वृन्दावन में यद्यपि तुम्हारा सब कुछ है, परन्तु वह मोहन मुरली नहीं है। यमुने,

परित्याग कर के साध्वी सुधा श्री माधव के चरणारविन्दों में प्रार्थना करती थी—'प्रभु ! हमारे स्वामी की रक्षा करो।'

कितनी ही नीरव रजनियाँ व्यतीत हो गईं; परन्तु शेखर की अवस्था में कुछ भी परिवर्तन न हुआ। ज्वर की ज्वाला से वे बकने लगे—'मेरा जीवन आज शेष होना चाहता है। मुझे अपने पास बुला लो।' माता और सुधा चुपचाप रोने लगीं। अच्युतानन्द ने कहा—'तुम अधीर न हो। तुम्हारे अधीर होने से रोगी की अवस्था और भी बिगड़ जायगी।' तब बहुत कष्ट होने से उन्होंने आत्मा संवरण किया। परन्तु हृदय में शान्ति न हुई।

शेखर की अवस्था क्रमशः बिगड़ने लगी। कभी कभी वे प्रेम की स्थिर दृष्टि से सुधा के मुख मण्डल की ओर देखते। एक दिन वे कह उठे—'शैल ! हमारे पास आई हो ? चलो, प्राणेश्वरी ! हम दोनों हाथ पर हाथ रख कर अनन्त पथ पर चलें। हमें कोई बाधा नहीं दे सकता।' दारुण शोक-यातना से सुधा चिल्ला उठी। उसकी चिल्लाहट सुन कर शेखर को ज्ञान हुआ। वे कहने लगे—'सुधा ! तुम रोती हो ? रोओ मत। अपने तप्त अश्रुजल से मेरे हृदय को सन्तप्त न करो। मुझे जाने दो। यह जीवन तुम्हारे साथ व्यतीत नहीं हो सकता। यदि मरणोपरांत फिर जन्म होगा, तो मेरा तुम्हारा मिलन होगा। तब मैं तुम्हें और शैल को ले कर सुखी रहूँगा'। इतना कह शेखर निःस्वर हो गए। रोरुद्यमाना सुधा

आश्रम परित्याग न किया। शरत की माता ने यथार्थ ही माधव के पाद पद्म में आत्म समर्पण कर दिया। उसी आत्म समर्पण के कारण उसने निदारुण पुत्र शोक पर जय प्राप्ति की। जब मनुष्य का चित्त भगवान् के पाद पद्म में आकृष्ट हो जाता है, तब उसे पार्थिव शोक व्याकुल नहीं कर सकते। और बालिका सुधा! हाय! उस के रमाङ्ग में आज शुभ्र वस्त्र शोभा पा रहे हैं। यह हृदय विदारक दृश्य है। दृश्य संसार के प्रति वैराग्योत्पादकारी है।

सुधा प्रति मुहूर्त निज जीवन के शेष दिनों की प्रतीक्षा करती रही।

सुधा जान गई थी कि प्रेम अविनश्वर है। मृत्यु के उपरान्त भी प्रेम का नाश नहीं होता। प्रेम स्वर्ग में भी मिलता है। ऊपर की तरफ हाथ उठा कर वह बोल उठी—हृदयेश! प्राण वल्लभ! प्राण जीवन! तुम बहुत दूर होते हुए भी मेरे हृदय से दूर नहीं। मैं इस हृदय मन्दिर में चिर दिन तुम्हारी पूजा करूँगी। मेरा देवता दूसरा नहीं। मेरे देवता तुम्हीं हो। यदि साधना की जीत हुई, मेरा जीवन शेष होने पर तुम से अवश्य मिलन होगा। हे प्रियतम! तब भी तुम मुझे फिर चरण से मत ढकेलना'*।

—चण्डीप्रसाद

*बङ्ग भाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत यतीन्द्रनाथ सोम, एम० एम० की "सुधा" नामक कहानी का भाषानुवाद।

रक्षा करने के लिए चीनियों ने जो इतिहास प्रसिद्ध दीवार बनाई थी उसका कुछ अंश इस पूर्वी तुर्किस्तान में भी था। इस प्रान्त में पहले कई बड़े बड़े नगर थे। बौद्धों के विहारों और मठों से यह प्रान्त सर्वत्र भरा हुआ था। इन मठों में बड़े बड़े बौद्ध विद्वान निवास करते थे। वे हजारों विद्यार्थियों को विद्या दान करते थे। उन्हों ने बहुमूल्य पुस्तकालयों तक की स्थापना की थी। जो बौद्ध श्रमण चीन से भारत और जो भारत से चीन जाते थे वे इन्हीं मठों और विहारों में ठहरते हुए जाते थे। इन लोगों के काफिले के काफिले चलते थे। चीनी परिव्राजक ह्वेनसांग और इत्सिंग आदि इसी मार्ग से भारत आए थे। उनके यात्रा वर्णनों में इस मार्ग में पड़ने वाले नगरों, नदियों, पर्वतों रेगिस्थानों आदि का बहुत कुछ उल्लेख पाया जाता है।

कालान्तर में उधर मुसलमानों का जोर बढ़ने पर उन्होंने चीन और भारत के बीच के इस राज मार्ग को धीरे धीरे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मठों, स्तूपों और विहारों को उजाड़ दिया। हजारों बौद्ध श्रमणों को तलवार के घाट उतार दिया। नगरों को तहस नहस करके उनको जमींदोज कर दिया। ये सभी स्थान बालू के टीलों में परिणत हो गए। तूफानों के कारण उड़ी हुई बालू ने इन सबको अपने नीचे यहाँ तक दबा लिया कि इनका नामोनिशाँ तक न रहा। अपने ऊपर आई हुई या आने

चला। इसके बाद रूस के रहने वाले दो पुरातत्ववेत्ताओं ने सन् १८९८-९७ ईसवी में उसी तुर्किस्तान के तुरफान प्रान्त में खोज की। उन्हें अपनी खोज में जो चीजें मिलीं उनका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी भाषा में प्रकाशित किया। उनकी देखा देखी फिनलैंड के भी कुछ पुरातत्वज्ञों ने उस रेगिस्तान में पदार्पण करके वहाँ का कुछ हाल लिखा। इस तरह, धीरे धीरे, लोगों का कौतूहल बढ़ता ही गया। अन्त में रूसी विद्वान् रैडलफ ने, सन् १८९९ ई० में, पुरातत्व विशारदों की एक सभा में इस बात का प्रस्ताव किया कि पूर्वी और मध्य एशिया के खण्डहरों की बाकायदा जाँच की जाय। यह प्रस्ताव पास हो गया। तब से इन प्रान्तों की जाँच के लिए कई देशों के विद्वानों के यूथ के यूथ वहाँ पहुँचे और अनेक बहुमूल्य पुस्तकों, मूर्तियों, चित्रों आदि का पता लगा कर उन्होंने उन पर बड़े मार्के के लेख प्रकाशित किए। यहाँ तक कि सुदूरवर्ती जापान तक ने कई विद्वानों को भेज कर वहाँ खोज कराई। वे लोग भी कितनी ही बहुमूल्य सामग्री अपने देश को ले गए।

१८९१ ईसवी में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के एक दूत चीनी-तुर्किस्तान में थे। उनका नाम था कप्तान बावर। उन्हें भोज पत्र पर लिखा हुआ एक ग्रन्थ मिला। उसे उन्होंने बङ्गाल की एशियाटिक सोसायटी को भेज दिया। डाक्टर हार्नली ने उसे पढ़ा। मालूम हुआ कि वह गुप्त नरेशों के समय की देवनागरी लिपि

उनकी लिखी हुई पुस्तक—'प्राचीन खुतन' (Ancient Khotan) में सविस्तर पाया जाता है। इसके बाद डाक्टर साहब ने चीनी तुर्किस्तान पर दो चढ़ाइयाँ और कीं। उनकी तीसरी चढ़ाई सन १९१३ में हुई। सन १९०६ इसवी वाली दूसरी चढ़ाई में उन्हें एक ऐसी कोठरी मिली जो बाहर से बन्द थी, परन्तु भीतर जिसके पुस्तकें भरी हुई थीं। इन पुस्तकों का कुछ ही अंश डाक्टर स्टीन को मिला; अवशिष्ट अंश एम० पालियो नाम के एक फ्रेंच विद्वान् के हाथ लगा। इस चढ़ाई का बहुत ही विशद वर्णन डाक्टर स्टीन ने पाँच बड़ी बड़ी जिल्दों में किया है। व प्रकाशित भी हो गई हैं। उनका नाम है सेरिंडिया (Serindia)।

अपनी दूसरी चढ़ाई में जिस समय डाक्टर स्टीन तुर्किस्तान में प्राचीन चिन्हों और वस्तुओं की खोज कर रहे थे उसी समय मध्य एशिया में खोज करने के लिए फ्रांस की राजधानी पेरिस में एक परिषद् की स्थापना हुई। उसकी सहायता फ्रांस की गवर्नमेंट ने भी धन से की और कई एक अन्य सभाओं ने भी की। इस परिषद् ने एक चढ़ाई की योजना की। एम० पालियो, जिनका नाम ऊपर एक जगह आया है, इसके प्रधानाध्यक्ष नियत हुए। वे दल-बल समेत जून सन १९०६ में पेरिस से रवाना हुए और मास्को, ताशकन्द होते हुए, पामीर के उत्तर काशगर तक पहुँच गए। वहाँ आस पास खोज करते हुए वे तुन हाग नामक स्थान में पहुँचे। इसके

दीवार सी मालूम हो, किसी को यह सन्देह न हो कि यह गुफा है और इस के भीतर पुस्तकें भरी हुई हैं। मुसलमानों ने पुस्तकादि के इस संग्रह के स्वामी बौद्धों की क्या दशा की, कुछ मालूम नहीं। तब से सन् १९०६ ईसवी तक यह गुफा बराबर बन्द रही।

इस गुफा के भीतर कोई १५ हजार पुस्तकें—संस्कृत, प्राकृत, चीनी, तिब्बती तथा कई अन्य अज्ञात भाषाओं और लिपियों में—मिलीं। रेशम के टुकड़ों पर खिंचे हुए सैकड़ों अनमोल चित्र भी प्राप्त हुए। पुस्तकें सभी ग्यारहवीं सदी के पहले की हैं। कितनी ही ब्राह्मी लिपि में हैं। अधिकतर पुस्तकों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से है। परन्तु काव्य, साहित्य, इतिहास, भूगोल, दर्शन आदि शास्त्रों से ही सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें इस पुस्तकालय से मिलीं। संस्कृत भाषा में कितनी ही लिखी हुई पुस्तकें इसमें ऐसी हैं जो भारत में सर्वथा अप्राप्य हैं। यहाँ तक कि इसकी अनेक पुस्तकें, जो चीनी भाषा में हैं, चीन में भी दुर्लभ क्या अलभ्य ही हैं। पुराने बही खाते, रोजनामचे और दस्तावेज तक मिले। इन सब का प्रकाशन धीरे धीरे हो रहा है।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत ने मध्य एशिया की राह चीन, सीस्तान (शकस्थान) और यूनान आदि को विद्या-दान देने और उन्हें सभ्य बनाने का कितना काम किया था।

[सरस्वती]

जैसे उद्दण्ड बादशाह को भी पत्र बार उसके सामनेसे भागना पड़ा था। परन्तु हमीर राव के राज्यलोभी दीवान की अज्ञानता तथा अकृतज्ञता से रणथम्भोर जैसे अजेय दुर्ग पर मुसलमानों का झण्डा फहराया।

अलाउद्दीन बादशाह व मेहमाशाह नामक एक मुसलमान दरबारी से एक अपराध बन पड़ा। बादशाह ने इस अपराध की खबर पाते ही उसे प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी। मेहमाशाह को इस कठोर आज्ञा की सूचना पहले मिल चुकी थी। इस लिए उसने भाग कर शरणागत वत्सल वीर हमीर की शरण ली।

यह सुन कर बादशाह ने हमीर को कहला भेजा कि मैं ने सुना है कि तुमने मेहमा को शरण दी है। क्या तुम को मालूम न था कि वह शाही अपराधी है? अथवा क्या तुम को मेरा प्रताप विदित नहीं है, जो तुमने ऐसी धृष्टता की है? क्यों व्यर्थ पतङ्गे की भांति सकुटुम्ब प्राण देने को उद्यत हुए हो? इसलिए मेहमा को मेरे पास भेज कर क्षमा प्रार्थी बनो। नहीं तो मैं शीघ्र ही आकर तुम्हारी इस उद्दण्डता का उचित पुरस्कार दूँगा।

दूत द्वारा बादशाह के इस सन्देश को सुनते ही, वीर हमीर दूत से कड़क कर बोले—बादशाह से कह देना कि हमीर ऐसी धमकियों से डरने वाला नहीं है। मैंने उसी वंश मे जन्म लिया है जिसके एक नरेश ने शहाबुद्दीन गोरी को सात बार हराया था और उसे मान बार ही सही-सलामत

एक बार अपने अपराधी को मांगा, परन्तु उस को फिर भी वही निर्भीक उत्तर मिला।

मैहमा शाह भी बड़ा वीर पुरुष था। वह तीर चलाने में अद्वितीय वीर था। ऐसा कहा जाता है कि युद्ध आरम्भ होने के दिन की पहली रात्रि को, किले के ऊपर खुली छत पर, हमीर का दरबार लगा हुआ था और नाच हो रहा था। सब राजपूत आनन्द मना रहे थे। कल युद्ध होने वाला है, इसकी किसी को कुछ भी परवाह नहीं थी। एक वीर राजपूत के लिए इससे बढ़ कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है? उनके शास्त्र में तो लिखा है कि क्षत्रिय को युद्ध में मरने से स्वर्ग मिलता है। फिर भला लड़ाई में मरने से कौन डरेगा? हमीर का ऐसा निर्भय ढङ्ग देख कर, अलाउद्दीन जैसे वीर मनुष्य का भी कलेजा दहल गया। उसके मुख पर निराशा के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। यह देख कर मैहमा का भाई मीर गावरू, जो कि बादशाह की फौज में था, बोला—आप इतने निराश क्यों होते हैं? मैं अभी हमीर के रङ्ग में भङ्ग किए देता हूँ। ऐसा कह कर उसने एक थोथा तीर पातुर की गड्डी पर मारा, जिस से वह बेचारी धड़ाम से गिर पड़ी। यह देख कर हमीर के मन में कुछ शङ्का हुई। परन्तु मैहमा ने आगे बढ़ कर कहा कि महाराज, यह काम मेरे भाई का है,

कि मैं दुर्ग को फतह करवा दूँगा। वीर राजपूत अपनी विजय के लिये जी तोड़ कर लड़ रहे थे। उन्हें दुष्ट सुरजन की दुष्टता की कुछ भी खबर न थी। उस समय मन्त्री ने आकर हमीर से कहा—महाराज, दुर्ग की भोज्य सामग्री समाप्त हो गई है। 'जोरा भारा' नामक खास खाली हो गए हैं। अन्न सामग्री एकत्र करना दुस्साध्य है। यह सुनते ही वीर हमीर के ऊपर वज्रपात सा हो गया। वह अवाक् रह गया। सरल हृदय हमीर उसकी दुष्टता न समझ सका।

रात्रि को एक दरबार किया गया और सब सरदारों की राय पूछी गई। किले में बन्द होकर भूखों मरना वीर-हृदय राजपूतों को कब पसन्द आ सकता था। और अधीनता स्वीकार करना तो उनका अपना गला घोंटना था। सब ने एकमति होकर जौहर करने की सम्मति दी। इस समय इस प्रकार हमीर को सङ्कट में देख, मैहमाशाह बोला—महाराज, आप चिन्ता न करें। यह सब लड़ाई मेरे पीछे है। मुझे बादशाह के हवाले कर दीजिये। यह सुनकर हमीर बोले—यह कभी नहीं हो सकता कि मैं राजपूत और राजा हो कर एक शरण आए हुए मनुष्य को वचन दे कर पकड़ा दूँ। धिक्कार है मुझे और मेरी माता को, यदि मैं ऐसा विचार भी करूँ! जब तक शरीर में प्राण है तब तक तुझे प्राणों से अधिक मानता हूँ।

के रूप में रण में राजपूत वीरों की विकट मंडली न इस उपस्थित हुई थीं। इस निराशा का समय न रहा उनके उत्साह मेघ बन और बादशाही सेना का किले की ओर देख, औघड़ करने का उद्देश्य है, वे बहुत शीघ्र गढ़ों से बाहर आये। उनके दृष्टिगोचर होते ही सेना में विकट गर्जना कर "हमीरराज की जय" का उच्चारण करके उनका स्वागत किया।

अब, अपनी सेना को शस्त्रों द्वारा उत्तेजित करके वे रण-भूमि में आ डटे। दोनों सेनाओं के आमने-सामने होते ही घोर घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। वीर पुरुष अपने खड्गों को शत्रुओं का रुधिर पान कराने लगे। वीर हमीर भी शाही सेना का मथन करने लगा। कई बार उसने बादशाह व हाथी की ओर वार किया, परन्तु कृतकार्य न हो सका। अन्त में बादशाह का हठ टूट गया और राजपूतों की सच्ची वीरता के सामने मुसलमान लोग न ठहर सके और धीरे धीरे पीछे हटने लगे। राजपूत वीर भी उत्साहित हो बड़ी वीरता से लड़ने लगे। अब मुसलमान लोग उनके सामने न डट सके और बची हुई सेना के साथ बादशाह भाग निकला। हमीर के सैनिकों ने बादशाह से शाही निशान छीन लिए। आनन्द में मग्न होते हुए निशानों को सेना के आगे किए हमीर लौटे।

के शब्द की ध्वनि राजपूत वीरों की विकट गर्जना में प्रतिध्वनित होने लगी। अब विलम्ब का समय न देख, रानी ने अन्तिम भेंट कर और बादशाही सेना को किले की ओर बढ़ते देख, जौहर करने का उपदेश दे, वे बहुत शीघ्र महलों से बाहर आए। उनके दृष्टिगोचर होते ही सेना ने विकट गर्जना करके 'हमीरराव की जय!' का उच्चारण करके उनका स्वागत किया।

बस, अपनी सेना का शब्दों द्वारा उत्तेजित करके वे रणभूमि में जा डटे। दोनों सेनाओं के आमने सामने होते ही घोर घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। वीर पुरुष अपने खड्गों को शत्रुओं का रुधिर पान कराने लगे। वीर हमीर भी शाही सेना का मर्दन करने लगा। कई बार उसने बादशाह के हाथी की ओर धावा किया, परन्तु कृतकार्य न हो सका। अन्त में बादशाह का हठ टूट गया और राजपूतों की सच्ची वीरता के सामने मुसलमान लोग न ठहर सके और धीरे धीरे पीछे हटने लगे। राजपूत वीर भी उत्साहित हो बड़ी वीरता से लड़ने लगे। अब मुसलमान लोग उनके सामने न डट सके और बची हुई सेना के साथ बादशाह भाग निकला। हमीर के सैनिकों ने बादशाह से शाही निशान छीन लिए। आनन्द में मग्न होते, जीते हुए निशानों को सेना के आगे किए हमीर लौटे।

मुसलमानों के निशानों को दूर से आते देख किले के

वत्सलता का व्रत पाला और राजा शिवि की भाँति अपनी कीर्ति अटल कर गये। हमीर की दृढ़ता वर्णन करते हुये किसी कवि ने कहा है—

सिंह-गमन, सत्पुरुष वचन कदलि फरै इक बार।
तिरिया तेल हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार ॥

आज तक यह दोहा बड़े ही आदर के साथ हमीर का नाम स्मरण कराता है।

—कुँवर नारायण सिंह
("भारतीय आत्मत्याग' से)



पड़ता है जिससे उस भिन्नता में भी एकता स्थापित हो जाय। यही सत्य का अन्वेषण है, यह म पत्र और व्यष्टि में समष्टि।

भारतवर्ष के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना भिन्न भिन्न जातियों का पारस्परिक सम्मिलन है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जाति प्रेम की समस्या अधिक कठिन थी। योरप में जिन जातियों का सम्मिलन हुआ है उनमें इतनी विषमता नहीं थी। उनमें से अधिकांश की उत्पत्ति एक ही शाखा से हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें जाति गत उद्वेष और विरोध की मात्रा कम नहीं थी तो भी कदाचित् उनमें वर्ण भेद नहीं था। यही कारण है कि इंग्लैंड में सैक्सन और नार्मन जातियों में इतना शीघ्र मिलाप हो गया। सच तो यही है कि सभी पाश्चात्य जातियों में वर्ण और शारीरिक गठन की समता है। यही नहीं, किन्तु उनके आदर्शों में भी अधिक भेद नहीं है। इसी लिए उनके पारस्परिक सम्मिलन में बाधा नहीं आती। परन्तु भारतवर्ष की यह दशा नहीं है। प्राचीन काल में श्वेताङ्ग आर्यों का कृष्णकाय आदिम निवासियों से मिलाप हुआ। फिर द्राविड़ जाति से उनका संघर्षण हुआ। उस समय द्राविड़ जाति भी सभ्य थी और उनका आचार व्यवहार आर्यों के आचार व्यवहार से सर्वथा भिन्न था। यह विषमता दूर करने के लिए तीन ही उपाय थे। एक तो यह कि इन जातियों का नाश ही कर दिया जाय। दूसरा

उनको वहाँ से हटा दिया। इसके बाद महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। उस समय भी मुसलमानों का प्रभुत्व यहाँ स्थापित नहीं हुआ। सन् ११६३ से मुसलमानों का शासन युग प्रारम्भ हुआ। उत्तर भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण में हिन्दू साम्राज्य बना रहा। विजयनगर का पतन होने पर कुछ समय के लिए समग्र भारत पर से हिन्दू साम्राज्य का लोप हो गया। परन्तु अठारहवीं सदी में मरहठे प्रबल हुए,और अन्त में उन्होंने फिर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अँग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ा और कुछ ही समय में हिन्दू और मुसलमान दोनों को अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

यद्यपि भारतवर्ष में मुसलमानों का साम्राज्य सन् ११६३ से प्रारम्भ होता है, तथापि कितने ही मुसलमान साधक और फकीर इन आक्रमणकारियों के पहले ही यहाँ आ चुके थे। आठवीं सदी में जब मुसलमानों ने भारत का एक भाग विजय कर लिया तब तो हिन्दुओं और मुसलमानों में घनिष्ठता हो गई। उस समय मुसलमानों का अभ्युदय बढ़ रहा था। बगदाद विद्या का केन्द्र हो गया था। कितने ही भारतीय विद्वान् खलीफा के दरबार तक जा पहुँचे। वहाँ उन लोगों की बदौलत संस्कृत के कितने ही ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। भारत में मुसलमानों ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित

कहैं कबीर सुनो भइ साधो, इन मे कौन दिवाना ॥

स्वदेश की कल्याण कामना से प्रेरित हो कबीर उस पथ को खोज निकालना चाहते थे, जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनों चल कर आत्मोन्नति कर सकें। परन्तु हिन्दू एक ओर जा रहे थे तो मुसलमान ठीक उसके विपरीत जा रहे थे। कबीर ने उनको चेतावनी दी—

अरे इन दुहु राह न पाई।
हिन्दू की हिन्दुवाइ देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भई साधो कौन राह ह्वै जाई ॥

इसी लिए कबीर ने हिन्दू की हिन्दुवाइ और तुरक की तुरकाइ दोनों को छोड़ दिया। उन्होंने केवल मनुष्यत्व को ग्रहण किया—

हिन्दू कहूँ तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिं।

उन्होंने दोनों को एक ही दृष्टि से देखा—

सम दृष्टी सतगुरु किया मेटा भरम विकार।
जहँ देखौं तहँ एक ही साहेब का दीदार ॥

सम दृष्टी तब जानिए सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा लखैं एक सी सोय ॥

कबीर का प्रयास व्यर्थ नहीं हुआ। हिन्दू और मुसलमान सम्मिलन की ओर अग्रसर हुए। भाषा के क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर खुसरो ने इस

परम हंस तेहि मानस जइस पूज महँ बास ॥

जो उनका दर्शन करना चाहते हैं उन्हें अपने हृदय को सदैव स्वच्छ रखना चाहिए—

तन दरपन कहँ साज दरसन देखा जौ चहइ।
मन सो लीजइ माज, महमद निरमल होय दिया।

उन्होंने एकत्ववाद की सदैव शिक्षा दी है—

एक कहत दुइ होय दुइ से राज न चलि सकइ
बीच तें आपहु खोय महमद एकाग्र होइ रहइ॥

भोग्य और भोक्ता में भी उन्होंने कोई भिन्नता नहीं देखी है—

सजइ जगत दरपन कइ लेखा,
आपुहि दरपन आपुहि देखा।
आपुहि बन अउ आपु पखेरू,
आपुहि सउजा आप अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूल गति फूले,
आपुहि भँवर बास रस भूले।
आपुहि फल आपुहि रखवारा,
आपुहि सो रस चाखन हारा।
आपुहि घट घट महँ मुख चाहइ,
आपुहि आपन रूप सराहइ।

आपुहि कागद आपु मसि आपुहि लिखन हार।
आपुहि लिखनी आखर आपुहि पँडित अपार॥

लिए घटा रजाते हैं। एक दिन मैं मसजिद जाता हूँ और एक दिन गिर्जा। पर मन्दिर मन्दिर में मैं तुम्हीं को खोजता हूँ। तुम्हारे शिष्यों के लिए सत्य न तो प्राचीन है और न नवीन। अबुल फजल का यह उद्गार मध्ययुग का नवीन सन्देश था। हिन्दी में सूरदास और तुलसी दास ने अपने युग की इसी भावना से प्रेरित हो मनुष्य जीवन में श्रेष्ठ आदर्श दिखलाया। उसी भाव को ग्रहण कर मुसलमानों में रहीम ने कविता लिखी। निम्नलिखित पद्यों में प्रकट हो जाता है कि रहीम ने हिन्दू भाव को कितना अपना लिया था।

> अनुचित वचन न मानिए जदपि गुराइस गाढि।
> है रहीम रघुनाथ ते सुजस भरत को बाढि॥
> कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
> पुरुष पुरातन की बधु, क्यों न चंचला होय॥
> गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
> रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव॥
> जो रहीम करिबो हतो ब्रज को इहै हवाल॥
> तो काहे कर पर धरयो गोवर्धन गोपाल॥

मुगलों के शासन काल में हिन्दी-साहित्य की जो श्री-वृद्धि हुई उसका कारण यही है कि उस समय मुसलमान भारत को स्वदेश समझने लगे थे। न तो हिन्दुओं ने

हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाओं से अलंकृत किया है।

राजनीति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान जाति का विरोध दूर नहीं हुआ। समाज के क्षेत्र में भी दोनों का संघर्ष बना रहा। तो भी साहित्य के क्षेत्र में दोनों ने सत्य का ग्रहण करने में सङ्कोच नहीं किया। इसी चिरन्तन सत्य के आधार पर—इसी ऐक्य मूलक आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति पर—भारत ने अपनी जातीयता की स्थापना की है। इसी जातीयता में सभी जातियाँ अपने अस्तित्व को स्थिर रख सकती हैं। इसमें सम्मिलित होने के लिए हिन्दू ने अपना हिन्दुत्व नहीं छोड़ा और न मुसलमानों ने अपना धार्मिक और सामाजिक संस्कार परित्याग किया। परन्तु इन दोनों का मिलन अनन्त सत्य के मन्दिर में हुआ, जहाँ बाह्य आचार व्यवहार और कृत्रिम जाति भेद के बन्धन से मनुष्यजाति की एकता भिन्न नहीं होती। यह एकता काल्पनिक नहीं है। यह हिन्दू और मुसलमान के जीवन में अभी तक काम कर रही है। सत्य की सीमा सङ्कुचित कर देने से ही इनमें परस्पर विरोध होता है। ईश्वर में ही सभी विरोधों का मिलन होता है। इस लिए उसी को अपना लक्ष्य मानकर भारत ने अपनी जातीयता की सृष्टि की है। यहाँ एक ओर समाज में आचार-विचार की रचना होती आई है और दूसरी ओर मनुष्य की एकता को लोग स्वीकार करते आए हैं। एक ओर भिन्न भिन्न वर्णों में

४३

महाभारत

लेखक—श्रीयुत सूर्य कुमार वर्मा

अँधेरी रात है। पृथ्वी से लेकर आकाश तक अँधेरा छाया है। एक शिविर में एक चिराग टिमटिमा रहा है। वहाँ एक स्त्री बैठी हुई है। उसकी आँखें रोते रोते सूज गई हैं। गालों पर सूखे हुए आँसुओं के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। वह अपना बायाँ हाथ गाल पर रक्खे बैठी है। उसके केश धूल के कारण मलिन हो रहे हैं और लटें छूट रही हैं।

---

* यह निबन्ध बंगाल के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत नवीन चन्द्र सेन के कुरुक्षेत्र नामक काव्य के सत्रहवें सर्ग के आधार पर लिखा गया है।

'तुम कौन ?'

'मैं रनशाला शैलजा।'

'हिं, हिं, वह स्वप्न की देवी है। मैंने स्वप्न में देखा कि मैं पूर्णचन्द्र के वक्षस्थल पर से अन्धकारमय पाताल के कठिन पत्थरों पर जा पड़ी हूँ। मेरा शरीर चूर चूर हो गया है। हृदय छिन्न भिन्न हो गया है। वहाँ पर नारायण की करुणामय मूर्ति आविर्भूत हुई। पाताल निर्मल तेज से प्रकाशित हो गया। उन्होंने मुझे सञ्जीवनी सुधा देकर एक देवी की गोद में बैठा दिया। क्या तू उसी स्वप्न की देवी है? यह पुण्यभूमि कौन सी है? यह स्वप्न राज्य है अथवा देव राज्य?'

शैलजा ने कहा—"बेटा! तुम शिविर में हो!"

"शिविर में! कहाँ के शिविर में?"

'कुरुक्षेत्र के शिविर में।'

यह सुन कर उत्तरा क्षण भर टकटकी लगाए देखती रही। कृष्ण पक्ष के अन्धकार में जिस तरह क्षीण हुए चन्द्रमा की कोर दिखाई देती है उसी प्रकार उत्तरा के मन में धीरे धीरे पीछे की बातों का स्मरण होने लगा। पितृगृह, नाट्यालय, वृहन्नला, उत्तर गोग्रहण समय की जय, विवाह, छ महीने तक भोग किया हुआ सुख स्वप्न, कुरुक्षेत्र का महा रण, वहाँ का शिविर, चक्रव्यूह, मृत पति के दर्शन और पश्चात् अन्धकार—

बालक को सिंहासन पर बिठाऊँगी और तुम मेरी राज्य-लक्ष्मी होगी। बालक का मुख देख कर, प्रजा को सुखी जान कर तुम्हारा दुःख दूर होगा।'

उत्तरा ने एक लम्बी साँस ली और कहा—'सूर्य अस्त होने पश्चात क्या दिन बाकी रहेगा ? चन्द्रमा के चले जाने पर क्या चान्दनी रह सकती है ? वृक्ष के भस्म होने पर उसकी छाया बनी रह सकती है ? जलाशय के सूख जाने पर क्या नलिनी वहां बनी रह सकती है ? कुरुक्षेत्र रूपी बादल में उत्तरा का आश्रयभूत वृक्ष उखड़ गया है—फिर इस लता की पीछे क्या दशा होगी ? मुझे इस समय तुम इतना ही आशीर्वाद दो कि उसका करा माता सुभद्रा, सुलोचना और शैलजा इन को स्वाधीन करके मैं अपने वृक्ष के पाद मूल के समीप अपना प्राण समर्पण करूँ।'

कुछ देर तक स्तब्ध रह कर उत्तरा ने फिर कहा—'इस कुरुक्षेत्र में मुझ सरीखी कितनी ही उत्तराओं का भाग्य फूटेगा, यह कहा नहीं जा सकता।'

'युद्ध समाप्त हो गया।'

'समाप्त !' उत्तरा आश्चर्य पूर्वक पूछने लगी।

शैलजा ने कहा—'हाँ, समाप्त हो गया। जगत की महा ज्वाला शान्त होगई। क्षत्रिय वन को भस्म करके अधर्मरूपी

पचा लिया तो फिर छोटे मोटे लिपा की क्या गणना? फिर उत्तरा ने पूछा—तो क्या उत्तरा के मेरे वे सब लोग नष्ट होगए? क्या हमारे नाना, दादा सब मुझ अभागिनी को अकेला छोड़ कर चले गए? सब लोग चले गए परन्तु मेरा हृदय विदीर्ण न हुआ। दो दिन तक मैं मूर्छित—बेहोश—पड़ी रही, परन्तु तो भी मेरे प्राण न निकले।

शैलजा ने कहा—'वत्स! तुम्हारे जीने की किसको आशा थी? परन्तु कृष्ण ने आगे आ होकर तुम्हें पुनर्जन्म दिया।'

'दयामय कृष्ण ने इस अनाथ—सूखी हुई लता को—क्यों बचाया? अग्नि में क्यों न झोंक दिया?'

'वत्स! तू कुरुकुल की लक्ष्मी है। कुरुकुल का आधार होने वाला एकमात्र अंकुर तेरे गर्भ में है। तेरा पुत्र मनुष्य मात्र का आशावृक्ष और धर्मराज्य का आधार-स्तम्भ होगा और तू स्वयं धर्मराज्य लक्ष्मी होगी।'

'क्या मेरे पाचों देवर कुशलपूर्वक हैं?'

शैलजा ने उत्तर दिया—'पाण्डव, सात्यकी और कृष्ण इनके सिवाय और कोई नहीं बचा। द्रोण पुत्र ने रात्रि समय शिविर में प्रवेश करके सोते हुए पाँचों बालकों का वध किया। अधर्म का अन्तिम अंक कल रात्रि को पूर्ण हुआ। अब खेल समाप्त हो गया। इस अधम राक्षसी से लोगों की रक्षा हो,

आकाश में दिखाई नहीं पड़ता था। न मालूम सारे नक्षत्र, शोक से व्याकुल हो कर, पृथ्वी पर गिर पड़े, अथवा कहीं गायब हो गए। सिर के बाल खुले हुए, शोक में व्याकुल, वीर नारी मृत पति, पुत्र, पिता अथवा बन्धुओं को वहाँ ढूँढ रही थीं। शकुनी और शृगाल रात्रि के समय उस श्मशान में इधर उधर धीरे धीरे घूमते और अपने कर्कश शब्द द्वारा रात्रि की शान्ति का नाश करते थे। उस समय उत्तरा का हृदय काँप उठा। शोक से व्याकुल हो कर वह शैलजा के गले में लिपट गई, और उसके वक्षस्थल पर मुख रख कर बोली—'जिस प्रकार ये चिताएँ धीरे धीरे जल कर शान्त हो रही हैं क्या उसी प्रकार मेरे हृदय में जलने वाली चिता भी शान्त हो जायगी? क्या इसी प्रकार कभी मेरे शोक की रात्रि भी समाप्त होगी?,

शैलजा ने कहा—देखो भारत माता के वक्षस्थल पर, असंख्य चिताएँ जल रही हैं। इस चितानल में, अधर्म जल कर भस्म हुआ जाता है और नवीन धर्म की बाल किरणों का प्रकाश धीरे धीरे हो रहा है। जगत् के प्राणियो, तुम्हारे और मेरे प्राणों को आनन्दित करने के लिए कृष्ण नाम की ध्वनि हुआ ही चाहती है।'

शैलजा उत्तरा को धीरे धीरे पति की चिता के समीप ले गई। यह चिता हिरण्यवती नदी के किनारे एक अशोक वृक्ष

के बिना कैसी हो रही है, क्या इसकी तुम्हें कुछ खबर है ? एक बार उसे अपने हृदय से लगा लो और एक शब्द बोल कर उसे सुखी करो। तुमने पृथ्वी पर उत्तरा के साथ छ महीने रह कर जो उसे स्वर्ग के समान सुख पहुँचाया और अब उसका हृदय विदीर्ण करके इस प्रकार चलते हुए ! तुम अपने प्रेम की कली इस लता में सचारित करके किस प्रकार चले गए ? खैर ! छ महीने के लिए मुझे क्षमा करो। छ महीने बाद उस फल को प्रगट कर, पृथ्वी पर तुम्हारा प्रतिबिम्ब स्थापित करके, यह उत्तरा, जिसे यह छ महीने छ युग के समान व्यतीत होंगे, तुम्हारे समीप आयेगी। पति की चिता पर मृत प्राण समर्पण करना, यह मृत्यु नहीं है। नाथ ! मुझे आशीर्वाद दो कि यह मृत्यु व्रत मैं अच्छी तरह पूरा कर सकूँ !"

शैलजा ने चिता भस्म अपने और उत्तरा दोनों के माथे पर लगा कर कहा—'वत्स ! इन माता का व्रत मुझ से पूर्ण हो, ऐसा मुझे आशीर्वाद दो। इसके बाद दोनों ने उस चिता के चारों ओर प्रदक्षिणा की और अपना कलेजा पत्थर का करके शिविर को वापस गईं। कृष्ण अब तक पाषाण मूर्ति के समान उसी अशोक वृक्ष के नीचे ज्यों के त्यों खड़े रहे। तब तक अर्जुन सुभद्रा को लेकर चिता के पास आए। उस समय अर्जुन शोक से व्याकुल थे। परन्तु सुभद्रा के मुख पर शान्ति की छाया झलकती थी। शोक का अपार सागर उस

मनुष्य की मुक्ति का मार्ग रक्त के सागर से है तो हे देव, एक बार में एक निमिष मात्र में कृष्ण के रक्त से पृथ्वी का स्नान क्यों न कराया ? एक श्मशान प्रज्वलित करके कृष्णों के हृदय को वहां क्यों न समर्पण किया ? आज अठारह दिन तक जो रक्त का प्रवाह रहा, उसमें का प्रत्येक बिन्दु कृष्ण के तप्त रक्त से निकला हुआ था। इन हर एक चिताओं में कृष्ण का प्राण भस्म हुआ है। प्रत्येक अनाथ स्त्री का हाहाकार का शब्द, गांधारी का शोक, उत्तरा की शोकमय मूर्ति, अर्जुन का दुःख शोक, सुभद्रा का वैराग्य इत्यादि बातों ने मेरे हृदय पर वज्रपात किया है। राज सूय-यज्ञ द्वारा निर्माण किया हुआ धर्म राज्य, बालू की भीत के समान जब नष्ट होने लगा तभी मैंने यह समझ लिया था कि रक्तस्नान हुए बिना, अग्नि में परीक्षा हुए बिना, पृथ्वी पर धर्म राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। नारायण ! तुम्हारी यह इच्छा जान कर, मैंने अपना हृदय विदीर्ण करके अठारह दिन तक पृथ्वी पर रक्त की नदी बहाई ! इतना करने पर भी प्राणों से भी अधिक प्रिय कुमार की आहुति देनी पड़ी। निष्पाप मानव पुत्र को अपने प्राणों की बलि देने के सिवाय क्या मानव जाति का उद्धार नहीं हो सकता ? यदि आप की यही इच्छा है, तो मैं शोक का परित्याग करता हूँ। आप के इच्छानुसार सब कार्य होना चाहिये। अब आप पृथ्वी पर धर्म राज्य की स्थापना कीजिए।'

हैं। उनके पास एक किनारे धनंजय खड़े थे। और दोनों के बीच में सुभद्रा देवी। प्रेमानन्द में मग्न होकर अपनी देह की सुध बुध भुला कर, व्यास ने कहा —'हे देवगण! ऋषिगण! एक बार यहाँ आकर इस पार्थिव त्रिमूर्ति के दर्शन करो। ज्ञानरूप कृष्ण, कर्मरूप धनंजय, और उनके मध्य में भक्ति रूपी सुभद्रा शोभायमान हैं। उनके सामने चिता-रूपी आत्म विसर्जन हो रहा है। ज्ञान, कर्म, आत्मविसर्जन ये भक्ति के निष्काम सूत्र द्वारा एकत्रित हुए हैं। यही मानव जाति के लिए मोक्षधाम है। यही द्वापर का अवतार है। यह महातीर्थ आँख भर कर आज मैंने देखा। मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। नारायण! आप महाभारत का गीत गाने की मुझे शक्ति दें, जिससे मनुष्य, उस गीत को सुन कर और कृष्ण नामामृत का पान करके, मुक्ति लाभ करें, और जिसको पढ़ कर पृथ्वी स्वर्गधाम बने।'

शैलजा ने गुरुदेव की पदरज अपने सिर पर धारण की और कहा—'हे गुरुदेव! तुम्हारी कृपा से, हे पुत्र! तुम्हारे स्नेह से, इस तेरी अनाथ माता का आज जन्म सफल हुआ! हे नारायण, आर्य और अनार्य दोनों के रक्षक, पतित अनार्यों को अपने पद कमल में शरण दो! तुम्हारे धर्म-राज्य में उनको भी स्थान प्राप्त हो! हे भगवान्, भारत वासियों को ज्ञान, भक्ति, कर्म और आत्म विसर्जन करने की शिक्षा दो, जिसके कारण ये पशु से मनुष्य कहलाने योग्य बनें।' —"श्री कृष्ण चरित" से।

क अत्युच्च शिखर पर विराजमान है। ज्ञान विज्ञान तथा कला कौशलमें जो उन्नति इस देश ने की है वह केवल विस्मयोत्पादक है। पदार्थ विद्या में यदि कहीं नित्य नए आविष्कार होते हैं तो वह इसी देश में। साहित्यिक अनुसंधान तथा दर्शनानुशीलन के लिए जर्मनी का विद्वज्जन समुदाय सकल संसार में प्रसिद्ध है। निपुणता और कार्यदक्षता उन का आदर्श वाक्य है। जिस काम को भी ये हाथ में लेते हैं पूर्ण किए बिना नहीं छोड़ते। सारांश यह कि आज इस देश की अवस्था को देख कर मनु भगवान् का यह कथन याद आता है—

> एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

किन्तु यही देश जो आज सूर्य के समान चमक रहा है आज से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व कुछ भी न था। यह बल, पराक्रम और तेज जिस के कारण आज बड़े बड़े राष्ट्र इस से भयभीत रहते हैं, पारस्परिक मेल के न रहने के कारण, मिट्टी में मिला हुआ था। शास्त्र विवेचन का तो कहना ही क्या, दो सौ वर्ष पूर्व जर्मन देश की एक भाषा भी न थी। अथवा यों कहिए कि कोई भाषा थी ही नहीं। फ्रेंच भाषा का सीखना ही गौरवास्पद समझा जाता था। वरन् सभ्य समाज में तो फ्रांसीसी भाषा का ही व्यवहार होता था। फ्रेंच कवियों की कविताओं का ही जर्मनी में प्रचार होता था। सच

बैठा। इस के मन में राजा कहलाने की उत्कट लालसा उत्पन्न हुई। और इसी उत्कण्ठा से वह प्रयत्न भी करने लगा। किन्तु 'राजा' पद की उपलब्धि केवल सम्राट से ही हो सकती थी, और सम्राट पोप का अनुयायी तथा फ्रेडरिक का धर्म्म विरोधी था। इस लिए यह काम कुछ कठिन था। दैव योग से सम्राट को एक घोर संग्राम के लिए सहायता की आवश्यकता पड़ी और उसने फ्रेडरिक को प्रसन्न करना जरूरी समझा। अतएव सन् १७०१ में फ्रेडरिक की मनोकामना पूर्ण हुई और एक महोत्सव में 'राजा' की उपाधि फ्रेडरिक को प्रदान की गई।

सन् १७१३ में महाराज फ्रेडरिक का पुत्र पहला विलियम गद्दी पर बैठा। इसकी प्रकृति बड़ी ही विचित्र थी। आज हम उसी के विषय में कुछ वर्णन करेंगे।

विलियम एक विचित्र पुरुष था। शरीर में बहुत ही बलवान् परन्तु बुद्धि में अक्खड़ जाट। धीरता तथा गम्भीरता की तो उस में गंध मात्र भी न थी। सभ्यता, कविता, सौन्दर्य, शिल्प और शिक्षा का वह कट्टर विरोधी था। उसका कथन था कि थोड़ी सी भी सामान्य बुद्धि महाविद्यालयों से कहीं बढ़ कर है। इस पर भी वह ऐसे समय में सिंहासन पर बैठा जब कि देश को उसकी बड़ी आवश्यकता थी।

उसका पिता विद्यालय बनाता, प्रजा को शिक्षा देने का

उसके हाथ में एक लम्बी सी छड़ी थी। उसी छड़ी से उसने पुत्र की खूब खबर ली। इसी छड़ी को लेकर वह नगर में भ्रमण किया करता था। यदि कोई पुरुष या स्त्री बिना कुछ काम करते हुए उसके दृष्टिगोचर होते तो वह तीन चार छड़ी लगा देता और कहता—'काम पर जाओ'।

उसने एक सभा बनाई थी जिस का नाम पीछे से 'तमाखू सभा' पड़ गया। इस सभा में राज्य विषयक बहुत गम्भीर विचार होते थे। किन्तु इसमें किसी ऐसे पुरुष को बैठने का अधिकार न था जो तमाखू न पीता हो। इस लिए वजीर आदि सब राजपुरुषों को अवश्य ही चुरुट पीना पड़ता था। पाठक, जरा सोचिए तो सही। धुएँ की लपेटों के बीच राजनीति तथा प्रजा सम्बन्धी गूढ़ विषयों पर विचार करने का इस से सुन्दर दृश्य क्या और कहीं दृष्टिगोचर होगा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, तमाखू सभा में प्रत्येक अमीर वजीर को तमाखू पीना पड़ता था। इसी प्रकार तमाखू के साथ बीयर (Beer) भी उन्हें पीनी होती थी। इन बातों से पाठक जान सकते हैं कि विलियम कैसा विचित्र मनुष्य था। यद्यपि उसका स्वभाव विलक्षण तथा लोकाचार के विरुद्ध था तथापि यही मनुष्य प्रशिया के एवं जर्मनी के महत्व और गौरव का सच्चा संस्थापक था। ऐसा क्योंकर हुआ, यह नीचे वर्णन किया जाता है।

को, जो लम्बे आदमियों की तलाश में उस देश में गये थे, फांसी दे दी। इस के कुछ दिन बाद उस ने विलियम को लिखा कि आपके विद्यालय में एक विद्वान् आचार्य है। कुछ काल के लिए उसकी हमें आवश्यकता है। आप कृपा कर उन्हें भेज दीजिए। विलियम ने उत्तर दिया—नो टॉल मैन, नो प्रोफेसर, अर्थात् न कोई लम्बा मनुष्य आप के यहाँ से मिला, न कोई अध्यापक यहाँ से जावेगा। इस प्रकार चौबीस सौ लम्बे मनुष्यों की एक बड़ी सेना उसने तैयार की। उस सेना की रक्षा वह पितावत करता था। इस सेना को Potsdam giants अर्थात् राक्षस की सेना कहते थे। यही शारीरिक बल था जिस को विलियम के पुत्र फ्रेडरिक ने लेकर सारे योरप के मुकाबले में विजय प्राप्त की और अपना तथा अपनी जाति का नाम उज्ज्वल किया।

विलियम में, यदि वर्तमान समय के आचार-शास्त्र के अनुसार, बहुत से दोष थे तो साथ ही दो बड़े गुण भी थे। एक तो वह आलस्य का द्वेषी था। प्रत्येक को काम करता हुआ देख कर ही वह प्रसन्न होता था और इसी प्रकार जिस काम को करता था उसको बड़ी दृढ़ता से पूर्ण करके ही छोड़ता था। संसार की निन्दा तथा प्रशंसा की उसे कुछ भी परवा न थी। उसने राज्य के प्रत्येक भाग से सकल शिथिल भावों को निकाल कर दृढ़ता स्थापित की थी। सेना को तो उसने बहुत ही

५५

त्रिमूर्ति

लेखक—श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

[इस लेख के लेखक श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी०ए० अपने कृत्रिम 'नवीनचन्द्र' नाम से भी लिखते रहे हैं। आप मध्य प्रदेश के रायपुर जिले के अन्तर्गत खैरापुर रजवाड़े के निवासी हैं। आप बहुत अच्छे लेखक समालोचक तथा कवि हैं। श्रीयुत द्विवेदी जी के बाद आप कई वर्ष तक प्रयाग की 'सरस्वती' का सफलता पूर्वक सम्पादन करते रहे हैं। आज कल आप राजनाँद गाँव के स्टेट स्कूल में अध्यापन का कार्य करते हैं। आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं—हिन्दी साहित्य विमर्श, विश्व साहित्य और पच पात्र।]

सौम्य और मधुर रहता है। परन्तु जीवन के मध्याह्न काल में हमारे लिए प्रकृति का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। संसार के अनन्त कार्यों में निरत होकर हम केवल विश्व के विषम संताप का अनुभव करते हैं। सब कुछ वही रहता है, हमीं दूसरे हो जाते हैं। पहले वर्षा-काल में कीचड़ का कुछ भी ख्याल न कर हम आकाश के नीचे पृथ्वी के वक्ष स्थल पर विहार करते थे। जब जल के छोटे छोटे स्रोत कल कल करते, हँसते, नाचते, थिरकते, बहते जाते थे, तब हम भी उन्हीं के साथ खेलते, कूदते, दौड़ते थे। परन्तु सभ्य होने पर हमें वर्षा में कीचड़ और गँदलेपन का दृश्य दिखाई देता है और हम अपने संसार को नहीं भूलते। वाल्मीकि और तुलसीदास के वर्षा वर्णन में हम यह बात स्पष्ट देख सकते हैं। दोनों विख्यात कवि हैं, दोनों ने एक ही विषय का वर्णन किया है। परन्तु जहाँ वाल्मीकि के वर्णन में हम प्रकृति का यथार्थ रूप देखते हैं, वहाँ तुलसीदास के वर्णन में हम संसार की कुटिलता का परिचय पाते हैं। इसका कारण यही है कि वाल्मीकि ने तपोवन में कविता लिखी थी और तुलसीदास ने काशी में अथवा अन्य किसी नगर में।

कवि पर देश-काल का यही प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव कवि की कल्पना गति में बाधक नहीं होता तो भी इस में सन्देह नहीं कि उसके कारण कवि की कल्पना एक निर्दिष्ट पथ पर विचरण करती है। होमर सीता की कल्पना

पृथ्वी मधुपूर्ण हो जाती है। उस समय हमें जान लेना चाहिए कि हम वाल्मीकि, व्यास और होमर के सत्ययुग में पहुँच गये हैं।

काव्य दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। कुछ काव्य ऐसे होते हैं जो कवि के व्यक्तित्व से पृथक् नहीं किए जा सकते। उन में कवि ही की आत्मा छिपी रहती है। ऐसे काव्यों में कवि अपनी प्रतिभा के बल से अपने जीवन के अनुभवों ही के द्वारा समस्त मानव-जाति के चिरन्तन गूढ भावों को व्यक्त कर देता है। परन्तु कुछ काव्य ऐसे होते हैं जिन में विश्वात्मा सचरण करती है। वे देश और काल से अनवच्छिन्न रहते हैं। ऐसे ही काव्यों को महाकाव्य कहते हैं और उनकी रचना वही कवि करते हैं जो विश्व कवि कहलाते हैं, जो समग्र देश और समग्र युग के भावों को प्रकट कर अपनी कृति को मानव जाति का जीवन धन बना जाते हैं। गिरिराज हिमालय के सदृश वे पृथ्वी को भेद कर आकाश-मण्डल को छूते हैं। उन पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा अटल बने रहते हैं और उनकी कविता आदर्श अनिश्चित काल तक लोगों को पुनीत करती रहती है। भारतवर्ष में रामायण और महाभारत इसी प्रकार के महाकाव्य हैं। प्राचीन ग्रीस के इलियड और ओडेसी उसी के समकक्ष महाकाव्य हैं। भारतवर्ष में जो स्थान वाल्मीकि और व्यास का है, योरप में

होता है कि ये किंवदन्तियाँ कवियों की कृतियों पर सर्व साधारण की आलोचनाएँ हैं। कविता की उत्पत्ति कैसे होती है, यह इस घटना के द्वारा बतलाया गया है। इस मर्त्यलोक में जीवन और मृत्यु की जो लीला हो रही है, मनुष्यों के हास्य में भी करुणा वेदना की जो ध्वनि उठ रही है, क्षणिक संयोग के बाद अनन्त वियोग की जो निदारुण निशा आती है, उसी से मर्माहत होकर कवि के हृदय से सहसा जो उद्गार निकल पड़ता है, वही कविता है। जिस कविता में वेदना का स्वर नहीं, वह कविता माधुर्य से हीन है। शेली ने इसी भाव को निम्नलिखित पद्य में व्यक्त किया है—

Our sweetest songs are those,
That tell of saddest thoughts.

व्यासदेव ने हिन्दू समाज को धर्म और नीति की शिक्षा दी है। उनके महाभारत से ही हिन्दू-सदाचार की सृष्टि हुई है। इसी लिए उस को पञ्चम वेद कहते हैं। परन्तु धर्म और ज्ञान की सूक्ष्म विवेचना करने वाले व्यास जी का जन्म वृत्तान्त ऐसा नहीं है कि उसे प्रकट करने के लिए लोग लालायित हों। क्या उनके जीवन से यह सिद्ध नहीं होता कि जन्म किसी मनुष्य का भविष्य निश्चित नहीं कर देता। होमर अन्धा था। 'होमर' शब्द का अर्थ ही अन्धा है। इसी प्रकार हमारे सूरदास भी अन्धे थे। जो जगत् के बाह्यरूप की अवहेलना

कुछ लोगों को उसकी कथा अस्वाभाविक प्रतीत होती है। परन्तु यह उन का भ्रम है। रामायण से यही सिद्ध होता है कि मानव-समाज किस प्रकार आदर्श रूप में परिणत हो सकता है, पृथ्वी स्वर्ग कैसे हो सकती है। अरविन्द बाबू की राय है कि रामायण में एक विशुद्ध नैतिक अवस्था का चित्र पाया जाता है। उसमें शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास दिखाया गया है। साथ ही साथ इन शक्तियों का स्वभाव की शुद्धता और श्रेष्ठ धार्मिक जीवन के कार्यों की सहायक बनाने की भी आवश्यकता बतलाई गई है।

व्यास जी ने महाभारत में पार्थिव शक्ति की पराकाष्ठा दिखला कर उसकी निस्सारता दिखलाई है। उन्होंने कर्तव्या-कर्तव्य और धर्माधर्म का बड़ा ही सूक्ष्म निर्णय किया है। स्वर्ग में युधिष्ठिर को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके धर्मात्मा भाइयों का तो वहाँ पता नहीं, पर अधार्मिक दुर्योधन स्वर्ग की विभूति का उपभोग कर रहा है। बात यह है कि अपने कर्तव्य क्षेत्र में बलि हो जाना, यही धर्म की पराकाष्ठा है।

होमर के दो काव्य प्रसिद्ध हैं। एक का नाम इलियड है और दूसरे का नाम ओडेसी। ईलियड में प्राचीन ग्रीस के इतिहास में प्रसिद्ध 'ट्रोजन वार' नामक युद्ध का सविस्तर वर्णन है। प्राचीन काल में ट्रजन एशिया में एक समृद्धिशाली राज्य था।

को ईश्वर-पद प्राप्त है। उन का नाम मात्र स्मरण करके नीच मनुष्य भव सागर को पार कर जाता है। मनुष्यों की यह भक्त भावना उनके अलौकिक चरित्र के कारण नहीं है, किन्तु उनके लौकिक चरित्र के कारण है। उनकी विशाल महिमा से आनन्द उत्पन्न हो सकता है, प्रेम की उत्पत्ति नहीं हो सकती। रामचन्द्र ईश्वर थे, पर आये थे वे मनुष्य ही के रूप में। उनमें मनुष्योचित गुण थे। वे पुत्र थे, भ्राता थे, स्वामी थे। उन्हों ने मनुष्यों के सुख दु ख और आशा निराशा का अनुभव किया था। जो राज राजेश्वर है, वह दरिद्र की कुटी का अनुभव नहीं कर सकता। परन्तु रामचन्द्र ने ब्रह्मचर्यव्रत भी धारण किया था, राज सिंहासन से नीचे उतर कर दरिद्रता को आलिङ्गन किया था, वल्कल वस्त्र पहन कर जङ्गल जङ्गल घूमे थे। तभी तो अधर्मियों को उनके पास आने का साहस होता है। तुलसीदास जी ने रामचन्द्र के चरित्र में उनकी ईश्वरीय शक्ति का बार बार स्मरण कराया है। इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। सच पूछो तो इससे रामचरित मानस में बड़ा दोष आगया है। सीता की वियोग व्यथा से पीडित होकर रामचन्द्र जी ने जो विलापोद्गार किये हैं, उन्हें पढ कर हृदय द्रवीभूत हो जाता है। सम्भव नहीं कि कोई पाठक उन स्थलों को पढ कर—जहाँ तुलसी दास जी ने करुण रस का स्रोत बहा दिया है—आँसू न बहाये। परन्तु ऐसे स्थलों में तुलसी दास जी हठात् यह

तब तक उसके हृदय से रामायण का प्रभाव दूर न हो सकेगा।

मानव जाति एक ही है तो भी देश और काल के व्यवधान से वह अनेक खण्डों में विभक्त हो गई है। धर्म के समान साहित्य का भी यही एक उद्देश्य है कि वह मनुष्यों को एक दूसरे से पृथक् रखने वाले इस व्यवधान को उठा दे। यदि यह कभी सम्भव हो जाय, तो हम पृथ्वी पर सौन्दर्य का यथार्थ रूप देखेंगे। परन्तु भिन्नता दूर होने के स्थान में बढ़ ही रही है। धार्मिक क्षेत्र में जब कभी किसी महात्मा ने मानव जाति को एक करने की चेष्टा की, तब न केवल उसकी चेष्टा व्यर्थ हुई, बल्कि उस से संसार में भेद भाव की संख्या बढ़ाने वाले एक और नए पन्थ की सृष्टि हो गई। संसार में जितने मत प्रचलित हैं, उन सब का प्रारम्भ इसी उद्देश्य से हुआ था। तो भी हम देखते हैं कि उन्हीं से संसार में पारस्परिक विद्वेष और घृणा के भाव फैले हैं। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में यह हाल नहीं है। यहां किसी महान आत्मा का अभ्युदय होने पर विद्वेष और घृणा के स्थान में प्रेम और सहानुभूति के भाव जाग्रत होते हैं। सभी लोग परस्पर मिलते जुलते, देते-लेते हैं और इस प्रकार अपना जातित्व छोड़ कर मनुष्यत्व ग्रहण करते हैं। साहित्य में आदान प्रदान का यह कार्य बड़ी शान्ति से होता है। किसी की दृष्टि भी उस पर नहीं जाती। भारत ने योरुप को कितना दिया और उस से कितना लिया, इ

४६

हेनरी फेवर

प्रकृति का राज्य रहस्यपूर्ण है। जो उसमें विचरण करता है वह प्रकृति की विलक्षणता में मुग्ध हो जाता है। कहीं पहाड़ों की शृङ्गमाला है, तो कहीं विस्तृत वन भूमि है। कहीं अनन्त जल सागर है, तो कहीं तप्त बालुकामय रेगिस्तान है। प्रकृति के कौतुक, उसकी क्षुद्रातिक्षुद्र लीलाएँ हमें आश्चर्य-सागर में डाल देती है। सच तो यह है कि उसकी सभी बातें विस्मयोत्पादक हैं, सभी आह्लाददायिनी हैं।

प्रकृति के इसी राज्य में हमारे चरितनायक हेनरी फेवर के जीवन का अधिकांश व्यतीत हुआ है। प्राणि शास्त्र के

कीड़े मकोड़े तथा फूल पत्ते उनके साथी थे। खेल की ऐसी आनन्ददायिनी सामग्री के कारण उनको बाल्यावस्था में दुःख का लेशमात्र भी अनुभव नहीं हुआ।

बारह वर्ष की अवस्था में वे पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजे गये। उनका शिक्षक एक नाई था। वह अपने व्यवसाय के अतिरिक्त गिरजा घर में घण्टा बजाने का भी काम करता था। फिर भी वह लड़कों को पढ़ाने के लिए समय बचा लेता था। अपने परिवार के साथ वह स्कूल में ही रहता था। उसके जानवरों के कारण विद्यार्थियों को अपनी पढ़ाई में बहुधा बाधा पहुँचती थी। जाड़े के दिनों में प्रत्येक विद्यार्थी को खुद आग जलाने के लिए जङ्गल से लकड़ियाँ चुन लानी पड़ती थी। यद्यपि स्कूल की ऐसी दीन दशा थी, तो भी उसके शिक्षक ने अपने भरसक ऐसा प्रयत्न किया कि उसके विद्यार्थियों में विद्या के प्रति अनुराग जाग्रत हो गया। उसका उपकार हेनरी अपने जीवन भर मानते रहे।

अकाल के कारण हेनरी के पिता को रोडेज नगर में नौकरी करनी पड़ी। वहाँ हेनरी को पाठशाला में पढ़ने का फिर अवसर मिला। इतने दिनों की ही पढ़ाई में उन्हें महाकवि वर्जिल के ग्रन्थ समझने की योग्यता हो गई। परन्तु इसी बीच में उन्हें अपनी जीविका के निर्वाह की चिन्ता हुई। वे उस समय सिर्फ सोलह वर्ष के थे। काम सीखने के लिए समय न

मन मे नई नई बातें उत्पन्न होने लगीं। उन का अवकाश का समय फूल, घोंघे और कीट-पतङ्ग एकत्र करने में बीता करता था। यहां एक प्रोफेसर से उनकी मित्रता हो गई। ये भी गणित शास्त्र और प्राणिशास्त्र के प्रेमी थे। एक दिन भोजन करते समय उन्हों ने फेबर को घोंघे के सम्बन्ध की कुछ अनोखी बातें बताई। बातें उन्हों ने घोंघा को चीर फाड करके खोज निकाली थी। इससे फेबर को एक नया ही तरीका मालूम हुआ। भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों को एकत्र करने और उन के बाह्य शरीर की रचना पर विचार करने के सिवा वे अब शस्त्र द्वारा चीर फाड करके फूलों और कीड़े-मकोड़ों की जांच करने लगे।

इस विषय में फेबर साहब की ज्ञान जिज्ञासा इतनी बढी कि वे दिन रात परिश्रम करने लगे। इससे उनका स्वास्थ्य बिगड चला और उन्हें अपनी बदली करानी पडी। अब की बार वे फ्रांस के एक्किग्नोन गांव की पाठशाला में अध्यापक हुए। वहां भी वे अपनी शिष्य मण्डली के साथ बाहर खेतों में घूमा फिरा करते थे।

स्कूल में कामों में फँसे रहने के कारण फेबर साहब को प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करने के लिए कम अवकाश मिलता था। उनकी यह बडी इच्छा थी कि वे किसी विश्वविद्यालय में अध्यापक हो जायँ जिससे उन्हें पशु पक्षियों और पौधों के सम्बन्ध मे शिक्षा देने का अवसर मिले। यदि वे अपने निश्चय

क्योंकि रेंया अपने छत्ते में जितने गुबरीले एकत्र करती हैं, वे बहुत काल तक वहाँ कैद रहने पर भी मरते नहीं। हाँ उनकी चलने फिरने की शक्ति जरूर नष्ट हो जाती है, जिससे सारी रेंया के अण्डों से बच्चे निकलने तक वे जीवित रहें और बच्चों को यथा समय ताजा भोजन मिल सके। क्या खूब, रेंया भी बड़ी अग्रशोची निकली!

फेवर साहब ने अपनी इस खोज को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। उनकी यह पुस्तक इतनी रोचक, सरल और मौलिक निकली कि सब वैज्ञानिक इस ग्रामीण पाठशाला के अध्यापक की असाधारण बुद्धि पर मुग्ध हो गए। डारविन तक ने इस पुस्तक की प्रशंसा की। उन्हें इस पुस्तक के बदले में पारितोषिक तो कम मिला, परन्तु वैज्ञानिकों की उदार आलोचनाओं से वे विशेष रूप से उत्साहित हुए।

यदि फेवर साहब को अपनी जीविका की चिन्ता न होती और यदि वे केवल प्रकृति विज्ञान के अध्ययन में ही संलग्न रहते तो सम्भव था कि वे संसार में कोई बड़ा काम कर दिखाते। दासत्व के बन्धन से मुक्त होने के लिये उन्होंने उद्योग तो किया, परन्तु अपने भोले भाले स्वभाव के कारण चूक गये। उन्होंने मजीठ की जड़ से रङ्ग बनाने का सुगम उपाय खोज निकाला। पर वे उसे गुप्त न रख सके। दूसरे लोगों ने उसे जान कर खासा लाभ उठाया और वे मुँह ताकते रह गये। उनके इस आविष्कार

उसके सिवा पाठशालोपयोगी पुस्तकों की रायल्टी मिलना भी बन्द हो गया। इस सङ्कट में फेवर ने जान मिल की मदद चाही। उदारचेता मिल ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और बिना दस्तावेज के उन्हें एक अच्छी रकम दे दी।

फेवर को जीवन भर कठिन परिश्रम करना पड़ा। उन्होंने मिल साहब के सब रुपये अदा कर दिए, परन्तु आजन्म उनका उपकार मानते रहे। इस के बाद एकान्त में रहने की इच्छा से वे सेरिग्नान की शान्ति कुटीर में चले आए और तीन वर्ष के बाद यहीं से उन्होंने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उसकी अच्छी कद्र हुई। इस के बाद उन्होंने 'निःसार भूमि-खण्ड' नामक एक पुस्तक लिखी। उसमें उन्होंने अपने बगीचे के कीट पतङ्गों का जीवन वृत्तान्त लिखा। उसमें कीड़ों के सम्बन्ध में एसी ऐसी बातें बताई गई हैं जिन्हें मनुष्य पहले न जानते थे। क्षुद्र प्राणियों के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण उनकी छोटी छोटी और तुच्छ बातें भी उन्हें आनन्दप्रद थीं। एक स्थान पर वे लिखते हैं कि ये तुच्छ जीव अपनी सहजबुद्धि से विलक्षण काम करते हैं। ऐसा कोई मनुष्य न होगा जो मकड़ी के जाले को देख कर उसकी कारीगरी की प्रशंसा न करे। परन्तु आश्चर्य है कि जिस मकड़ी में जाला बनाने की योग्यता है उसमें उसको सुधारने की शक्ति नहीं। जान पड़ता है कि फेवर महाशय मकड़ी की बुद्धि और असमर्थता का यह अद्भुत मेल

लिखी हैं। महत्त्वपूर्ण होने के कारण उनकी सभी पुस्तकें आदरणीय हुई।

फेबर की 'विचित्र देश की गाथा' नामक पुस्तक अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। उसमें जीव जन्तुओं की लीला, उनकी कार्य कुशलता और बुद्धिमत्ता बड़ी योग्यता से, निरीक्षण करके, लिखी गई है। उसी की एक कहानी का अनुवाद नीचे दिया जाता है।

"एक बार मुझे पुराने बादाम के वृक्ष पर भूरे रङ्ग का रेशम का एक कच्चा कोया मिला। उसे मैंने घर ले जाकर मेज पर रख दिया। कुछ समय बाद मैं क्या देखता हूँ कि कोये में से एक मयूरपक्षी कीड़ा निकल कर बाहर झाँक रहा है। इतना बड़ा पतङ्गा देखने का मौका मुझे और कभी नहीं मिला था। यह कीड़ा अपने रङ्ग बिरंगे पंखों के कारण बड़ा मनोहर था। उसे मैंने तुरन्त काँच के ग्लास में बंद किया। सन्ध्या समय जब मेरी छोटी बेटी सोने के लिए अपने कमरे में आ रही थी तब वह एकाएक चिल्ला उठी—'दादा दादा, इधर देखो, तुम्हारा पुस्तकालय तो बड़े बड़े पतङ्गों से भर गया है। मैं तुरन्त अपनी कोठरी में गया। लगभग एक दर्जन के बड़े बड़े पतङ्गे कमरे के भीतर उड़ रहे थे। पता लगाने पर मुझे विदित हुआ कि प्रात काल पैदा हुई राजकुमारी पर 'टीका' चढ़ाने के लिए ये सब राजकुमार देश देशान्तरों से आ कर एकत्र हुए हैं। परन्तु इन्हें यह मालूम कैसे हुआ? यह सच है कि रेशम का कीड़ा कोई साधारण कीड़ा नहीं है और उसकी

"यदि हम मयूरपखी को एक स्थान में बन्द करें, जहाँ वायु का आना जाना न हो सके, तो क्या परिणाम होगा? क्या वह अपना विचार बेतार के तार यन्त्र द्वारा अन्य स्थानों को भेज सकेगी? क्या यह विद्युत या चुम्बक प्रवाह से अपना काम लेती है? यह सोचकर पतङ्गी को काँच के औंधे प्याले के भीतर बन्द करके मैंने परीक्षा की। अब की बार कमरे में किसी प्रेमी का आगमन न हुआ। तब मैंने उस प्याले में एक बारीक सूराख बनाया। देखता क्या हूँ कि राजकुमारी के साथ प्रेमालाप करने के लिए राजकुमारों का समूह आ पहुँचा। मेरी शङ्का का समाधान हो गया, और साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि कैसी चाह जिस स्थान में बन्द रहे, यदि थोड़ी भी हवा आ जा सकती हो, तो वह अपना सन्देश अपने प्रेमियों के पास बिना रुकावट भेज सकता है।

'इस बड़े रहस्य की व्याख्या समाप्त होने के पूर्व कैदी का अन्त हो गया और मुझे अपने प्रश्नों का पूर्णतः उत्तर पाने के लिए बहुत दिनों तक ठहरना पड़ा। सच है, सफलता उसी की दासी है जो धैर्यवान् है और साथ ही अपने कार्य में दृढ़ भी है। परीक्षा के लिए पतङ्गे खोजते खोजते लगभग तीन वर्ष व्यतीत हो गए। अन्त में मुझे मयूरपखी तो नहीं, परन्तु उसी जाति का एक दूसरा पतङ्गा मिला। इससे मेरी पुरानी पहेली हल हो गई।

तैयार हो गया। ऐसा ही विलक्षण हाल भूमि की गाथा का है। इस सम्बन्ध में फेबर साहब ने एक चतुर प्राणी की कारीगरी का हाल लिखा है। यहा हम उसका केवल संक्षिप्त विवरण देते हैं।

नकायन और गुलाब के पत्तों में विचित्र प्रकार के छिद्र देख पड़ते हैं। उन में कुछ तो वृत्ताकार और कुछ अण्डाकृति रहते हैं। इन छिद्रों को देखने से यही प्रतीत होता है कि यह किसी स्तुत्य और चतुर कारीगर का काम होगा। अण्डाकृति छिद्र भिन्न भिन्न परिमाण के होते हैं, परन्तु वे शुद्धता से कटे हुए रहते हैं। भला, कहो तो इन कपड़ों को काटने-छाटने वाला दरजी कौन होगा? यह दरजी मधु मक्षिका है जो अपना घर बनाने के लिये काट छांट कर पत्ते एकत्र करती है।

पत्तों के अण्डाकृति टुकड़ों से थैली बनाई जाती है जिस में अण्डे और मधु रक्खे जाते हैं। पत्तों के छोटे वृत्ताकार टुकड़े थैलियों के ढकन का काम देते हैं। इन्हीं से थैलियों का मुँह बन्द किया जाता है। मधुमक्खी १०–१२ थैलियों से अपना घर का बाहरी ढांचा बना लेती है। यह प्राय अपना घर पृथ्वी पर रहने वाले कीड़े मकोड़ों के खाली बिल में बनाती है। यदि बिल की गहराई ६–७ इञ्च से अधिक हुई, तो वह उसे पत्तों से पाट कर उस की गहराई कम कर देती हैं। बिल के अन्य रास्ते भी मजबूत पत्तों के फाटक से रूँध दिए जाते हैं। बहुधा देखा

४७

आकाश-गङ्गा

स्वच्छ आकाश की ओर रात के समय देखने से एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफेद बादल के समान अनुमान चार हाथ चौडा, एक प्रकाशमय पथ दिखाई देता है। उस पथ को आकाश गङ्गा कहते हैं। कोई कोई उसे दूध गङ्गा के नाम से भी पुकारते हैं। अँगरेजी भाषा में उसे 'मिल्की वे' कहते हैं। यह प्रकाशमय पथ अथवा आकाश गङ्गा असंख्य तारों से बनी हुई एक तेजस्वी मालिका है।

बडे से बडे दूरदर्शक यन्त्र से इस आकाश गङ्गा का जितना भाग एक बार में दिखाई देता है, उसका एक चित्र एक विद्वान्

पास उगे हुए मालूम होते हैं। पर निकट जाने से यह बात ज्ञात होती है कि वे एक दूसरे से बहुत अन्तर पर हैं। इसी तरह आकाश गङ्गा का प्रकाशमान पथ भी हमें ऐसा दिखाई देता है मानो मोती टँके हुए वस्त्र का एक लम्बा टुकड़ा एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला हुआ है। अत्यन्त दूरदर्शी दूरबीन से आकाश गङ्गा का जो अप्रतिम सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, उसका वर्णन शब्दों की शक्ति से बाहर है। नीचे दिये गये दृष्टान्त द्वारा उसका कुछ आभास ध्यान में आ सकेगा।

एक बड़े कमरे में काली मखमल का फर्श बिछा दिया जाय और फिर कमरे की छत में बिजली के सैकड़ों दीपक लटका दिये जायँ। तदनन्तर कमरे के काले फर्श पर दो मन हीरे, माणिक और मोती आदि रत्न बिखेर दिये जायँ। तब बिजली का बटन दबा कर सारे दीपक जला दिये जायँ। दीपक को जलाने के बाद जो दृश्य उस कमरे का हो जायगा, उस के सौन्दर्य से तेज दूरबीन के द्वारा देखे गये आकाश गङ्गा के सौन्दर्य का कुछ अनुमान देखने वाले के ध्यान में आ सकेगा।

तेज दूरबीन से नीला आकाश कहीं कहीं ऐसा दिखाई देता है, मानो उस में बड़े बड़े सूर्यों का ढेर लगा है और कहीं कहीं ऐसा भी देख पड़ता है, मानो इन सूर्यों की दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। कहीं कहीं बड़े बड़े मीनार और कहीं कहीं दरवाजे से भी दिखाई देते हैं। कहीं तो ये सूर्य एक दूसरे के निकट ऐसे

साफ साफ चित्र प्लेटों पर लिये जा सकते हैं। यह इस शताब्दी का एक अद्भुत आविष्कार है। सम्पूर्ण नभमण्डल के चित्र २५ हजार भिन्न भिन्न प्लेटों पर उतारे गए हैं। इनके द्वारा आकाश के जो अद्भुत चमत्कार दिखाई देते हैं उनका यथार्थ वर्णन मनुष्य की वाणी और लेखनी से परे है। खगोल शास्त्र के जानने वालों का मन तथा बुद्धि इन दृश्यों को देखकर आश्चर्य के महासागर में गोते खाने लगती है।

आकाश गङ्गा हमसे कितनी दूर है, इसका अनुमान भी हम में से बहुतों ने न किया होगा। उसकी दूरी की कल्पना तुम्हें हो जाय, इस लिए हम उसका कुछ हाल सुनाते हैं। मान लो कि एक मिनट में एक मील चलनेवाली रेलगाड़ी पर हम सवार हुए और ड्राइवर ने उसके एन्जिन को आकाश गङ्गा की ओर बढ़ाया। एक घण्टे में साठ मील दौड़ने वाली हमारी गाड़ी दिन रात चलती ही रही। हम पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य को भी पार करके आगे निकल जायँ। इस प्रकार एक अब्ज शङ्ख) वर्ष तक रात दिन हमारी गाड़ी भागती रहे, तब कहीं, हमारे प्रवास का आधा भाग पूरा हो सकेगा। विचार करना चाहिए कि एक घण्टे में साठ मील चलने वाली गाड़ी ने एक अब्ज वर्षों में कितनी यात्रा की। हिसाब लगा कर वर्षों की संख्या जानने पर कदाचित मनुष्य की कल्पना को भी चकित होना पड़े।

के तारकाएं बहुत पास पास दिखाई देती थीं। अब इन नये नियों में उनकी दूरी बढ़ती जाती है। आँखों से भी अब हम हजारों सूर्य आकाश में दिखाई देने लगे हैं। जैसे जैसे हम आगे बढ़ते हैं, ये सूर्य हमें अधिक प्रकाशमान और स्पष्ट दिखाई देते हैं और इनका परस्पर अन्तर भी अधिक जान पड़ता है। इस प्रकार दो अब्ज वर्षतक प्रवास करने पर आकाश गङ्गा के प्रदेश के किनारे हम अवश्य पहुँच जायँगे, पर आकाश गङ्गा के भीतर आ पहुँचे, यह बात हम अब भी नहीं कह सकते, क्योंकि उस समय भी ऊपर की ओर दृष्टि डालने से आकाश पथ, जैसा हमको पृथ्वी से दिखाई देता था, वैसाही असंख्य तारों से युक्त अब भी दिखाई देता है। डर है कि प्रवास में हमारी गाड़ी कहीं किसी सूर्य के पास न चली जाय, नहीं तो हम और हमारी गाड़ी भस्मीभूत हो जायँ। ऐसा होने से हमारी राख अनन्त प्रदेशों में से कहाँ चली जायगी, इसका पता भी हमें न लगेगा।

पृथ्वी से आकाश गङ्गा की दूरी का अनुमान हम ऊपर के उदाहरण से भी ठीक ठीक नहीं करा सके। वास्तव में वह हमारे लगाए हुए मीलों के हिसाब से भी अधिक दूर है। कई खगोल शास्त्रियों ने तो गणना की है कि आकाश गङ्गा के अनेक नक्षत्र हम से इतनी दूर हैं कि वहाँ से हमारी पृथ्वी तक उनका प्रकाश आने में ३,००० से १५,००० वर्ष तक का

गिनती मे है! परमेश्वर की अनन्त और अपार सृष्टि में हमारी बड़ी पृथ्वी का कोई हिसाब ही नहीं। हमारे पड़ोसी शुक्र और मङ्गल के निवासियों के सिवाय कोई उसे पहचानता ही नहीं। महासागर के बालू की असंख्य कणिकाओं मे से एक कणिका रही तो क्या, और न रही तो क्या? जहाँ करोड़ों सूर्यों का भी हिसाब नहीं, वहाँ एक क्षुद्र मनुष्य की कौन गिनती है? परमेश्वर की इस अलौकिक और अपूर्व रचना का विचार कर के भी, मनुष्य का अभिमान यदि न चूर्ण हो जाय तो बड़े दुःख की बात है।

इस महान् आकाश मे चमकती हुई असंख्य पृथ्वियां, अगणित सूर्यों और अगणित तारकाओं का एक ब्रह्माण्ड है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि ऐसे ऐसे २१ ब्रह्माण्ड हैं। ये सब ईश्वरीय माया के प्रदेश के जिस भाग में हैं, उस से कई गुना अधिक भाग वाला एक और प्रदेश है। उस से ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति का अभी आरम्भ ही नहीं हुआ। यह इतना बड़ा माया सम्भूत प्रदेश परमात्मा के अनन्त और अपार शरीर के साढे तीन करोड़ रोमों मे से एक की तरह किसी एक कोने मे पड़ा हुआ है। योग का तत्त्व जानने वाले महापुरुष यही कहते है—रे मनुष्य! माया के इस छोटे से प्रदेश में ही तेरा, तेरी पृथ्वी का, तेरे इस ब्रह्माण्ड का कोई हिसाब नहीं। तो परमात्म प्रदेश मे तेरी क्या गिनती हो सकती है? अभिमान

४८

बर्लिन

लेखक—श्रीयुत कृपानाथ मिश्र, एम० ए०

[आपका जन्म चम्पानगर (भागलपुर) में दिसम्बर १९०५ ई० में हुआ था। आप पटना कालेज पटना में अँगरेजी के असिस्टैंट प्रोफेसर हैं। अँगरेजी के विद्वान् होकर भी आप हिन्दी की सेवा करते हैं। आपने विदेश की बात, श्याम, साहित्य आदर्श इत्यादि सात पुस्तक लिखी हैं। आप योरप की सैर कर चुके हैं।]

बर्लिन आते ही मुझे योरपीय सभ्यता से वितृष्णा हो गई। गत महायुद्ध के बाद योरप का असल रूप बर्लिन में ही दिखाई दिया है। विजय हुई फ्रांस इँग्लैंड की, पर विजय के

होगा कि आप बर्लिन के एक भोजनालय में हैं। खर्च भी यहा विशेष नहीं। कोई चार रुपये में आप चार-पाँच भाषाओं में चार पाच देशों की युवतियों के साथ वार्तालाप कर सकते हैं, चार पाँच देशों के खाद्य और मद्य ग्रहण कर सकते हैं—यदि आपकी इच्छा हुई तो। इतने सस्ते दाम में पेरिस और लदन के किसी प्रसिद्ध भोजनालय में आप प्रवेश भी नहीं कर सकते। ऐसे सुन्दर दृश्य आपको इन दोनों शहरों में कहीं न दीख पड़ेंगे।

पर इससे क्या? विज्ञान की उन्नति में बर्लिन ने अपना रूप खूब सजाया। वृद्ध युवक बने। युवक सुन्दर बने। बालकों ने शरीर मजबूत किया। बालिकायें बालकों की तरह कसरत करने लगीं। युवतियां प्रेम को पागलों का प्रलाप समझ नाना कर्मों में विरत हुई। मध्यवयस्का नारी ने अपना रूप युवती की तरह सजाया। वृद्धा ने चर्म के कुञ्चन पर विजय पाई, जवानी के वेग को फिर रक्त में दौड़ाया—ओषधि-प्रयोग से। किसलिए? बस, यहा सभी चुप हैं। कोई उत्तर नहीं दे रहा है इस प्रश्न का। बहुतेरे इस प्रश्न की आवश्यकता भी नहीं समझते। बर्लिन का हृदय सूखा है। इसने मखमल के अँगरखे से दिल के घावों को ढाकने का कठिन परिश्रम किया है। घाव ढँके नहीं, ज्यों के त्यों हैं। देखने-वाला इन्हें देख ही लेता है, बाहरी परदे को फाड़ कर।

होगा कि आप बर्लिन के एक भोजनालय में हैं। खर्च भी यहाँ विशेष नहीं। कोई चार रुपये में आप चार-पाँच भाषाओं में चार पाँच देशों की युवतियों के साथ वार्तालाप कर सकते हैं, चार पाँच देशों के खाद्य और भक्ष्य ग्रहण कर सकते हैं—यदि आपकी इच्छा हुई तो। इतने सस्ते दाम में पेरिस और लंदन के किसी प्रसिद्ध भोजनालय में आप प्रवेश भी नहीं कर सकते। ऐसे सुन्दर दृश्य आपको इन दोनों शहरों में कहीं न दीख पड़ेंगे।

पर इससे क्या? विज्ञान की उन्नति से बर्लिन ने अपना रूप खूब सजाया। वृद्ध युवक बने। युवक सुन्दर बने। बालकों ने शरीर मजबूत किया। बालिकायें बालकों की तरह कसरत करने लगीं। युवतियाँ प्रेम को पागलों का प्रलाप समझ नाना कर्मों से विरत हुईं। मध्यवयस्का नारी ने अपना रूप युवती की तरह सजाया। वृद्धा ने चर्म के कुञ्चन पर विजय पाई, जवानी के वेग को फिर रक्त में दौड़ाया—औषधि प्रयोग से। किसलिए? बस, यहाँ सभी चुप हैं। कोई उत्तर नहीं दे रहा है इस प्रश्न का। बहुतेरे इस प्रश्न की आवश्यकता भी नहीं समझते। बर्लिन का हृदय सूखा है। इसने मखमल के अँगरखे से दिल के घावों को ढाँकने का कठिन परिश्रम किया है। घाव ढँके नहीं, ज्यों के त्यों हैं। देखने वाला इन्हें देख ही लेता है, बाहरी परदे को फाड़ कर।

in which part, is Sanskrit in India?" इसने संस्कृत का एक शहर समझ रक्खा था। प्रायः सभी जर्मन संस्कृत की खबर रखते हैं, गाँधी की जीवनी पढ़ते हैं, रवीन्द्र ठाकुर की कविता मुखस्थ करते हैं। ज्ञान की तृष्णा जर्मनों का वहम है। ये सभी बातें जानते हैं। विधाता से ही इनकी होड़ है।

जानना और समझना एक नहीं। आप फूल के सम्बन्ध में सभी बातें जान सकते हैं—फूल क्यों खिलता है, किस सरल पदार्थ के अवयव में उसका रूप परिपुष्ट होता है, प्रकृति के किस नियमानुसार उसका नाश हो जाता है, गन्ध का आधार कौन सी वस्तु है। पर फूल को समझता है वही (शायद कवि!) जो फूल के रहस्य को स्वीकार कर फूल के मर्म की ओर ध्यान दौड़ाता है। जर्मनों ने सभी वस्तुओं को जानने की असाधारण चेष्टा की है। ये सफल भी हुए हैं दूर तक। पर सफलता की मात्रा इनकी न समझ की मात्रा के तुल्य है। इन्होंने जाना सब, समझा कुछ भी नहीं। जीवन की सभी शक्तियों को पराजित कर इन्होंने जब पूछना चाहा, 'अब किधर?' तब उत्तर मिला ही नहीं। प्रश्न की प्रतिध्वनि व्यङ्ग्य करके विलीन हो गई।

फलतः आनन्द के बदले जर्मनों ने पाया कौतुकमय हर्ष (Sensation)— अँगरेज बेचारा सोचता ही नहीं। उसका जीवन भारतवर्ष के अपढ़ ग्रामीण की तरह किसी प्रकार स्वच्छन्द

in which part, is Sanskrit in India ?" इसने संस्कृत का एक शाहर समझ रक्खा था। प्राय सभी जर्मन संस्कृत की खबर रखते हैं गांधी की जीवनी पढ़ते हैं, रवीन्द्र ठाकुर की कविता सुगन्ध करते हैं। ज्ञान की तृष्णा जर्मनों का छन्द है। ये सभी बातें जानते हैं। विधाता से ही इनकी होड़ है।

जानना और समझना एक नहीं। आप फूल के सम्बन्ध में सभी बातें जान सकते हैं—फूल क्या खिलता है, किस तरल पदार्थ के अवयव से उसका रूप परिपुष्ट होता है, प्रकृति के किस नियमानुसार उसका नाश हो जाता है, गन्ध का आधार कौन सी वस्तु है। पर फूल को समझता है वही (शायद कवि!) जो फूल के रहस्य का स्पर्श कर फूल के मर्म की ओर ध्यान दौड़ाता है। जर्मनों ने सभी वस्तुओं को जानने की असाधारण चेष्टा की है। ये सफल भी हुए हैं दूर तक। पर सफलता की मात्रा इनकी वे समझ की मात्रा के तुल्य है। इन्होंने जाना सब, समझा कुछ भी नहीं। जीवन की सभी शक्तियों को पराजित कर इन्होंने जब पूछना चाहा, 'अब किधर ?' तब उत्तर मिला ही नहीं। प्रश्न की प्रतिध्वनि व्यङ्ग्य करके विलीन होगई।

फलतः आनन्द के बदले जर्मनों ने पाया कौतुक मय हर्ष (Sensation)— अँगरेज बेचारा सोचता ही नहीं। उसका जीवन भारतवर्ष के अपढ़ ग्रामीण की तरह किसी प्रकार स्वच्छन्द

सभा न मन से दूर कर दिया। कुछ दिनों तक खूब मजा रहा। पर अब लोग अपनी स्वच्छन्दता से थक कर पूछ रहे हैं, 'अब किधर?' कोई भी उत्तर नहीं मिल रहा है। हृदय के प्रायः सभी रस सूख चुके हैं। संस्कार के प्रायः सभी पल्लव नष्ट हो चुके हैं। अब किस की बारी है? किसे अब तोड़ेंगे, ये ज्ञानबल पूर्ण जर्मन? ये स्वयं नहीं जानते। ऐसी अवस्था में एक जर्मन दूसरे जर्मन से कुछ पूछने का साहस नहीं कर रहा है। दोनों के हृदय सूने हैं। एक जर्मन रमणी दूसरी जर्मन रमणी को देख कर सिहर उठती है, दोनों ने प्रेम को जला दिया है। इस हृदय की मरुभूमि में पहुँच कर जर्मनों ने एक स्वाँग रचना आरम्भ किया—शरीर के सौंदर्य के आभरणों से सजाने का। इसी स्वाँग में ये आज कल निरत हैं। चारों ओर फिर विज्ञान की भेरी बज उठी है। लोग अपने आप को भुलाने का दारुण प्रयत्न कर रहे हैं। पाप और पुण्य के द्विविध भावों को भुला कर जर्मनी फिर असीम शक्ति की उपासना में लीन हुआ है। उसे किसी की परवा नहीं, न अपनी आत्मा की ही सुध है। आध्यात्मिक दृष्टि से जर्मनी विधवा है। इस वैधव्य की सूचना जर्मनी को बार बार मिल रही है, पर प्रति बार वह करुणाभाव से इस सूचना की ध्वनि को अन्यान्य ध्वनियों में डुबा डालती है। जर्मनी का आधुनिक इतिहास वेश्या की दुःखपूर्ण गाथा

किसी रेल के सामान। यह आडम्बर फिर क्या? इसलिये कि जर्मन का क्षत वक्ष स्थल आज भी किसी स्पृह साम्राज्य का स्वप्न देख रहा है, इस लिए कि भग्न आशाओं की समाप्ति पर भी जर्मन अपने को देवताओं का सहपाठी समझता है। यह भूल है। जर्मनी की शक्ति योरप की अन्धी शक्ति का सर्वोच्च शिखर है। जर्मन रुकना जानते ही नहीं। ठेस जब जब लगती है तब वे खड़े होकर और जोरों से दौड़ते हैं। ऐसी दौड़ में मादकता भरी है। ऐसी दौड़ चक्षु हीन असीम बलशाली युवक की तरह अनुकरणीय नहीं, करुण होती है।

जर्मनी की यह शक्ति, ऐसी आदर्शहीन साधना विश्व के लिए महत्वपूर्ण आध्यात्मिक चितावनी है। और यही जर्मनी का विश्व को एक मात्र दान है। जिसने अपने आपको खोया है वह दूसरों को चितावनी के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकता। जिसने अपने को ढूँढने की शक्ति का अपव्यय किया है वह दूसरों में कौतूहल उत्पन्न कर सकता है, दूसरों को आनन्दित नहीं कर सकता। जो कुमारी विधवा हो चुकी है वह दूसरों को सोहाग का स्वप्न कैसे दिखावे? जिस पिंजड़े में चिड़िया नहीं उसके सजानेवालों को देखकर क्षोभ नहीं तो और हो क्या?

  

(एक सभासद का रण वेश में प्रवेश)

सभासद्—सरदार, महाराणा के शरीर में अगणित घाव हो गए हैं, रक्त की धारा निकल रही है, तलवार चलाते चलाते हाथ थक गये हैं। चेतक घोड़ा मृतप्राय हो गया है, राणा फिर भी पागलों की तरह लड़ रहे हैं। इस विकट समय पर हमें क्या आज्ञा है?

चन्द्रा०—कुछ नहीं। राणा के साथ साथ युद्ध करने जाओ। लड़ते लड़ते मर जाओ। मैंने उपाय सोच लिया है।

(सभासद का प्रस्थान)

चन्द्रा०—चित्तौड़! जन्म भूमि, प्रणाम! तुम्हारा यह तुच्छ सेवक आज विदा लेता है। माँ, जीते जी तुम्हें स्वतन्त्र न देख सका, अब मर कर देखने की अभिलाषा है। अपने भग्नावशेषों के हाहाकारमय स्वर में एक बार आशीर्वाद दो। माँ, हँसते हँसते मरने की शक्ति प्रदान करो। जीवन के अन्तिम क्षण में कर्तव्य पालन करने का अवसर दो। जिस राज मुकुट को इन हाथों ने, तुम्हारे हित के लिए, वीरवर प्रताप के मस्तक पर रक्खा था, उसे यही उतारेंगे, तुम्हारे सम्मान की रक्षा के लिये—आशा लता को कुचलने से बचाने के लिए—आज महाराणा प्रताप के बदले यह चन्द्रावत प्राणों की आहुति देगा।

(प्रताप का रणोन्मत्त वेश में उधर से गुजरना)

कोई नजर नहीं आता जो चित्तौड़ के उद्धार के लिए इतना त्याग कर सके। हठ न करें, देव, आप राजदण्ड की आशा हैं। आपका यह क्षणिक हठ मेवाड़ की अखण्ड पराधीनता का कारण हो जायगा।

प्रताप—निश्चय कर चुका हूँ, चन्द्रावत जी, जीते जी रण से विमुख न हूँगा। क्षत्रिय परिस्थितियों का दास नहीं, स्वामी होता है। आप ये अपनी निधियाँ लीजिए। मेवाड़ के महाराणा ने देश के लिए एक सामान्य सैनिक के वेश में मरना खूब सीखा है। (फुर्ती से तलवार पर मुकुट रख कर चले जाते हैं)

चन्द्रा०—प्रभो! राणा की रक्षा करो। (मुकुट हाथ में लेते हैं) आ! सोने के ताज! संकट के स्नेही! मेवाड़ के राजमुकुट आ! तुझे आज एक तुच्छ सैनिक धारण कर रहा है। इस लिए नहीं कि तू वैभव का राजमार्ग है, बल्कि इस लिए कि तू देश पर मर मिटने वालों का मुक्ति द्वार है। आ मेरी साधना के अन्तिम साधन! इस अवनत मस्तक को माँ के लिए कट मरने का गौरव प्रदान करो।

(मुकुट पहन कर प्रस्थान)

(शक्तसिंह का प्रवेश)

शक्त—(नेपथ्य की ओर इंगित करके) घोर युद्ध हो रहा है। ए! चन्द्रावत ने मेवाड़ का राजमुकुट पहन रक्खा है। मुगलों ने उसे प्रताप समझ कर चारों ओर से घेर लिया है।

पहला मुगल—चलो जल्द, उसे पीछे से तीर मार कर गिरा देंगे, फिर बाँध कर—कैद करके—शाहजादा साहब की नजर करेंगे और सारे इनामों व मालामाल हो जाएँगे। (प्रस्थान)

शक्त—लेकिन इसके पहले ही दोजख चले जायँगे। वर्मान कुत्ते घायल शेर पर दूर से ढेला फेंकना चाहते हैं। तलवार के एक ही वार में दो के चार हो जाएँगे इसका पता ही नहीं। शक्तसिंह, अभागे शक्तसिंह, अब भी समय है। इन कुत्तों को राह ही में खपा कर मरने के पहले मातृभूमि मेवाड़ का कुछ हित-साधन कर ले। हृदय खोल, बन्धुत मिलो में, जी भर कर बोल, प्यारा बोल, पुराना बोल, हर हर-महादेव।

(पट परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(मेवाड़ अब पहले जैसी वैभव में शक्तसिंह)

शक्त—जीवन एक इतिहास बन गया है। भोलाभाला शैशव, पिता का तिरस्कार, उद्दाम यौवन, भाई से कलह, बदले की प्यास, अकबर का आश्रय, हल्दी घाटी का संग्राम, पश्चाताप, भाई से भेंट, "क्षमा"। दुनिया की दृष्टि में जीवन समाप्त। शक्त के हृदय की दशा कौन जानता है? जीवन नाटक का तृतीयांक सारा का सारा, 'स्वगत' हुआ चाहता है। संसार केवल एक भिक्षुक सन्यासी का करुण गान सुन पायेगा और कुछ नहीं। मेरी साधना नीरव है। मुझे कोई ठीक ठीक न जानेगा'

सुनो दशा की करुण पुकार
आज भिखारी आया द्वार

प्यारे लाल, लाडले भाई,
भर्ता, पिता लुटाओ आज
ओ 'जौहर' व्रत वाली बहनो
जन्म भूमि की रखलो लाज

खोलो खोलो हृदय उदार
आज भिखारी आया द्वार

वन वन पागल से फिरते हैं
आज पुजारी मा के लाल
आहुतियां भेजो प्राणों की
फिर उन्नत हो मां का भाल

बलि वेदी पथ रही निहार
आज भिखारी आया द्वार

पट परिवर्तन

(प्रस्थान)

['प्रताप-प्रतिज्ञा' से]

—जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

— o —

अमरिका का खोज का दावा अनेक जातियों और मनुष्यों ने किया है। चीनी, जापानी हिन्दू, तुर्क, अरब, रामन और अनेक यूरोपियन जातियों ने अमरिका खोज निकालने का श्रेय चाहा है। बहुत सम्भव है कि हर एक के दावे में कुछ सत्य का अंश हो, परन्तु इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि कोलम्बस की खोज से यूरोप वालों का ध्यान अमरिका की ओर आकर्षित हुआ और यूरोप के लोगों ने अमरिका आना आरम्भ कर दिया। आज कल की अमरिका कोलम्बस की खोज और उत्साह का फल है।

कोलम्बस का जन्म इटली के जिनोआ नामक नगर में हुआ था। उसके बालपन के विषय में अधिक पता नहीं चलता, परन्तु यह अवश्य मालूम है कि चौदह वर्ष की अवस्था में ही उस ने पढ़ना लिखना छोड़ कर समुद्रचर्या आरम्भ कर दी थी। उस समय भी उसे ज्योतिष आदि विषयों का न्यूनाधिक ज्ञान हो गया था। नौ विभाग में उसने शीघ्र उन्नति दिखलाई। उसने समुद्र मार्ग से कई बार इटली, पुर्तगाल, इंग्लैंड आदि देशों की यात्रा की। सौभाग्य वश उसका विवाह बार्तोलोमियो नामक एक सुविख्यात समुद्री यात्री की कन्या से हुआ। अपने श्वसुर के नक्शों से कोलम्बस का ज्ञान खूब बढ़ गया।

पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम भाग में यूरोप-वासियों को

विश्वास रखते थे। कुछ ऐसे भी लोग थे जो प्राचीन विज्ञान का थोड़ा बहुत जानते थे। उस सभा के सम्मुख कोलम्बस ने अपने प्रस्ताव उपस्थित किए। इसाई धर्माधिकारियों ने बाइबिल तथा अन्य धार्मिक लेखकों के ग्रन्थों का प्रमाण देकर यह कहा कि न तो धर्म के अनुकूल, न इतिहास के मत से और न दार्शनिक सिद्धान्त से पृथ्वी का अण्डाकार होना सिद्ध हो सकता है। गणित के प्रमाणों को तो वे मानते ही न थे। अब दूसरे वैज्ञानिकों ने कहा कि यदि मान भी लिया जाय कि पृथ्वी गोलाकार है तो भी कोलम्बस की कल्पना असम्भव सी है। कारण यह है कि पृथ्वी का कटिबन्ध इतना उष्ण होगा कि वहाँ जाना ही असम्भव है। और यदि किसी प्रकार गर्मी सहन भी हो सके तो भी पृथ्वी की गोलाई की परिधि इतनी अधिक है कि उस के द्वितीयार्द्ध तक पहुँचने में कम से कम तीन वर्ष लगेंगे। उन्होंने एक प्राचीन लेखक की साक्षी देकर कहा कि पृथ्वी का दूसरा अर्द्धांश जलमय और अन्त व्यस्त है। अन्त में उन्हों ने यह भी कहा कि यदि कटिबन्ध के नीचे जहाज गया तो फिर लौटना असम्भव है, क्योंकि लौटते समय चढ़ाई पड़ेगी। चूंकि कटिबन्ध बड़ा ऊँचा होगा, इस लिए अति अनुकूल वायु मिलने पर भी उस को पार करना नितान्त असम्भव है। सारांश यह कि विद्वत्सभा ने उसके प्रस्तावों को असम्भव और उपहास जनक कह दिया। इसी समय स्पेन में युद्ध भी

देकर, आशा दिलाकर, पक्षियों के उड़ने से और शैवाल के बहने से भूमि के समीप होने की सम्भावना बतला कर और समय-समय पर डाँट डपटकर किसी प्रकार कोलम्बस बेड़े से काम लेता ही रहा। अन्त में उसे अपने अदम्य उत्साह, साहस, धैर्य और शान्ति का पुरस्कार मिला—बारह अक्टूबर को उसे भूमि के दर्शन मिले।

उस द्वीप का कोलम्बस ने 'सान सेल्वाडोर' नामकरण किया। यहाँ के निवासी वस्त्रहीन और बिलकुल नग्न घूमते थे। कुछ स्त्रियाँ तो अवश्य पत्तियों, लताओं अथवा सूती कपड़ों के टुकड़ों से अपने अङ्ग को कुछ ढकती थीं, लेकिन अधिकांश स्त्रियाँ पुरुषों की तरह विचरण करती थीं। यहाँ के निवासियों को लोहे का ज्ञान न था और न उनके पास अस्त्र-शस्त्र थे। वे केवल बेंत की छड़ियाँ, जिनमें नीर लकड़ी का नुकीला टुकड़ा बँधा रहता था, लिए फिरते थे। उनका भी शायद ही कभी वे उपयोग करते हों। वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक परिश्रम करने वाली थीं। यहाँ के नर-नारी सीधे और सरल स्वभाव के थे।

द्वीप के निकट जहाजों को देखकर वहाँ के निवासी भौंचक्के से हो गये। वे समझे कि जहाज समुद्र के कोई जीव-जन्तु हैं जो सहसा रात्रि में निकल कर द्वीप के निकट आ गए हैं। उन्हें देखने के लिए झुंड के झुंड मनुष्य समुद्र तट पर एकत्रित हो गए। परन्तु जब जहाजों से उतर कर कोलम्बस और

उस द्वीप में समुचित स्वर्ण न मिलने के कारण वह इस विश्वास से प्रेरित होकर कि आगे बढ़कर स्वर्णपूर्ण देश मिलेगा, कोलम्बस आगे बढ़ा। इस बार उसे क्यूबा और हस्पिनोला द्वीपों का पता चल गया। दिसम्बर मास में उसका जहाज 'सन्ता मरिया' चट्टान से टकराकर नष्ट हो गया, अतएव उसे दूसरे के जहाज में शरण लेनी पड़ी। इस कारण तथा साथियों के आग्रह से वह स्पेन की ओर लौट पड़ा।

स्पेन पहुँचने पर कोलम्बस का बड़ा आदर हुआ। जिस जिस नगर से होता हुआ वह जाता था उस उसमें हर्ष, आनन्द और सम्मान की सीमा न रहती। उसी पालास नामक नगर में, जहाँ वह सिंहद्वार पर खड़े होकर अपने भूखे बच्चे के लिए रोटी माँगता था, वहाँ आज उसका भाग्य हाथ जोड़ रहे हैं! यही नहीं, राज दरबार में भी बड़ा उत्सव मनाया गया। कोलम्बस का राजधानी में बड़े समारोह से स्वागत हुआ। सर्वाङ्गपूर्ण दरबार में महाराज फर्डिनन्ड और महारानी आइसाबेला ने उसको निमन्त्रित कर, उसके श्रीमुख से उसकी खोज का विवरण सुना। उसके आमर्षक और उत्तेजक वृत्तान्त को सुनकर दोनों पुलकित हो गये और उन्होंने घुटनों के बल झुककर ईश्वर को धन्यवाद दिया।

कोलम्बस की खोज से यूरोप के अन्य राज्यों और राजाओं में भी नये जीवन और उत्साह का सञ्चार हो गया।

५१

दीर्घ जीवन

अँगरेजी में एक कहावत है—'सिम्पल लिविंग एंड हाई थिंकिङ्ग' (Simple living and high thinking)। इसका अर्थ है सादा जीवन और उच्च विचार। जीवन को सुखमय बनाने के लिए इससे अधिक मूल्यवान् शिक्षा और कोई नहीं। पाश्चात्य सभ्यता का आदर्श इससे भिन्न है। सभ्यता का अर्थ यह नहीं कि आवश्यकतायें जितनी अधिक बढ़ाई जा सकें, बढ़ाई जायँ, किन्तु सादा जीवन और उच्च विचार है। भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों का यही आदर्श

आनन्दमय बनता है। गीता में भी योग शास्त्र में युक्ताहार विहार से है क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं —

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

अर्थात्, हे अर्जुन, यह योग न तो बहुत खानेवाले का सिद्ध होता है, और न बिलकुल न खानेवाले का, तथा न अति शयन करने के स्वभाव वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

इसलिये दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए युक्ताहार विहार अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग समझते हैं कि सादा भोजन करने तथा अपनी आवश्यकताओं को कम करने से जीवन के आदर्श से गिर जायेंगे वे जान बूझ कर अपने पांवों में कुल्हाड़ी मारते हैं, अपने जीवन को छोटा बनाते हैं और जीते हुए भी जीवन का आनन्द नहीं भोगते। जो लोग बिना मिर्च-खटाई इत्यादि के भोजन नहीं करते, बिना चाय और क़हवे के शरीर में उत्तेजना का अनुभव नहीं करते धूम्रपान के बिना नहीं रह सकते, उनके लिए दीर्घ जीवन का द्वार सदैव ही बन्द रहता है। सादा भोजन और सादा जीवन मनुष्य की आयु को १००, १२५, १५० वर्ष तक बढ़ा सकते हैं। एक सज्जन एक दीर्घ जीवी मनुष्य के बारे में कहते हैं—

हनरी फोर्ड के शब्दों में दीर्घ जीवन प्राप्त करने में हानिकारक है। वे भविष्य वाणी करते हैं कि भविष्य में मनुष्य इन वस्तुओं का प्रयोग बिलकुल छोड देगा।

अच्छा भोजन मिलने पर यह नहीं है कि चाहे जितना खा जाना चाहिये। बल्कि जितनी भूख हो अथवा जितनी पाचन शक्ति हो उतना ही खाना चाहिए। पचने के पश्चात जो बच जाय उसको शरीर में से चाहे जैसे हो निकाल डालना चाहिये। आरोग्य और दीर्घ जीवन का यह सर्वश्रेष्ठ नियम है। एक डाक्टर कहते हैं कि 'अपनी पाचन शक्ति और अपनी भूख दोनों को भले प्रकार तोल लो। इस प्रकार शरीर के अङ्ग अपना काम उचित रूप से करेंगे। २० घोड़े की शक्ति वाले इञ्जिन से ४० घोड़े की शक्ति की आशा न करो। तुम सर्वदा इस बात की शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करो कि अच्छे भोजन में से जितना सार तुम ग्रहण कर सकते हो करो और पश्चात जो बच जाय उसको पूर्ण रूप से शरीर के बाहर निकाल दो। कोई इञ्जिन तब तक भली भाँति कार्य नहीं कर सकता जब तक उसका प्रयोग में आया हुआ वाष्प पूर्ण रूप से बाहर न निकल सके।

जब भोजन भली भाँति चबाया जाता है तभी वह जल्दी पचता है। इसलिए भोजन जल्दी जल्दी नहीं निगल जाना चाहिए, बल्कि धीरे धीरे चबाकर खाना चाहिए। इससे

सारी इन्द्रियां अपना अपना काम उचित रूप से कर रही हैं। उनका भोजन प्रतिदिन दो सेर गाय का दूध, प्रातःकाल ४, ५ रोटियाँ और सायंकाल ४ रोटियां है। अपनी इस उत्तम आरोग्यता का कारण वे बतलाते हैं कि उन्होंने कभी मिर्च, तेल, खटाई और गुड़ नहीं खाया। धूम्रपान इत्यादि तो उनके पास तक नहीं फटकता। यही कारण है कि वे प्रीतिभोजों तक में नहीं सम्मिलित होते। समय पर भोजन करते हैं। अर्थात सादा जीवन व्यतीत करने ही से उन्होंने ऐसी सुन्दर आरोग्यता प्राप्त की है।

एक और ऐसे ही दीर्घ जीवी सज्जन हैं, जो इस समय ८५ वर्ष के हैं। वे अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं, समाचार-पत्र पढ़ लेते हैं और मील डेढ़ मील टहल भी आते हैं। वे भी मिर्च, तेल, खटाई इत्यादि का प्रयोग नहीं करते। अन्न के अतिरिक्त १॥ सेर दूध पचा लेते हैं। वे आरोग्यता के लिए एक मन्त्र बतलाते हैं। वह यह कि 'सर्वरोगे मलाश्रये।' इस लिए जिस प्रकार हो शरीर के भीतर से मल निकाल देना चाहिए। मल को दूर करने के लिए वे एक ऐसी औषधि का प्रयोग करते हैं जो न तो पृथ्वी से उत्पन्न होती है न आकाश से, न उसमें कोई गुण और न उसका कोई आकार। वह औषधि उपवास है।

इस लिए सादा जीवन और उच्च विचार ही मनुष्य को दीर्घ जीवी और सुखी बना सकते हैं। —चमनलाल गर्ग

यहां हुएनसांग आया और उसने इसका उल्लेख मायूरा (Mo-yu-lo) के नाम से किया। अस्तु, मायापुर के ध्वंसावशेष वर्तमान हरिद्वार से कुछ दक्षिण जाकर अब भी दीख पड़ते हैं। इस स्थान पर कनिंघम साहब ने भी उपर्युक्त धारणा को सत्य माना है।

यों तो हरिद्वार की महिमा गंगा जी से है, किन्तु कपिल मुनि का स्थान, दक्ष प्रजापति का यज्ञस्थल तथा सती कुंड के क्षेत्र और कुम्भ के कारण यह बहुत प्रसिद्ध है। स्कन्द आदि पुराणों में इस कुम्भ की बड़ी महत्ता है। जिस वर्ष यहां कुम्भ होता है, उसके कुछ दिन पूर्व वृन्दावन में बहुत दिनों से वैष्णव सम्मेलन होता आया है। वैष्णव लोग वहीं से गाजे बाजे, हाथी घोड़े, और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर हरिद्वार कुम्भ स्नान करने आते हैं।

अब तो उपर्युक्त बात नाम मात्र की रह गई है, परन्तु प्राचीन काल में इस की बहुत आवश्यकता थी। कारण, उन दिनों हरिद्वार में शैवों की तूती बोलती थी। सुभीता पाते ही वे वैष्णवों को मार डालते थे। कहा जाता है कि किसी भ्रांत शैव सन्यासी का नियम था कि बिना एक वैष्णव का छिन्न मस्तक देखे वह जल तक नहीं पीता था। वैष्णव हरिद्वार में कुंभ स्नान का लोभ संवरण न कर सकने के कारण प्रायः तलवार के घाट उतारे जाते थे। यही नहीं, ऐसे अवसरों पर

हरिद्वार के बड़े विचित्र दृश्य हैं। यह नगर बहुत प्राचीन नगर है। हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थान है और प्रकृति के अन्यतम अंचल में उसका रुचिर शान्ति निकेतन प्रतिष्ठित है। शहर की आबादी गंगा के दक्षिण तट पर है। यहीं से गंगाजी की एक नहर निकाली गई है, जो यू० पी० के लाखों एकड़ भूमि को उर्वरा कर पुनः कानपुर के पास गंगा में आ मिली है। किन्तु नहरों के कारण गंगाजी यहाँ बहुत क्षीण रह जाती है। गंगा की वेगशीलता के कारण ही यहाँ आसानी से एक बांध बाँधा गया है, जिसके ऊपर एक सुन्दर पुल भी है। शहर छोटा, पर जनाकीर्ण है। अब तो यहाँ बिजली की रोशनी की बहार और नल का पानी लोगों का आधार है। किन्तु इनको देखने कोई नहीं जाता है। हरिद्वार में दर्शनीय है—कल कल निनादिनी माता गंगा की स्वच्छ जल धारा, उसका तीव्र वेग, उसकी भुवन-मोहिनी छवि, पहाड़ों के मनोहर दृश्य, नदी नालों का सुन्दर विस्तार और लता गुल्मों, पशु-पक्षियों, वृक्षों तथा पुष्प पल्लवों का अनन्त शृङ्गार—मनोमुग्ध कर रुचिर बहार।

हरिद्वार में निम्नलिखित स्थान विशेष रूप से दर्शनीय हैं—

'हर की पैड़ी'—यों तो हरिद्वार का एक भाग ही इस नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु मुख्य स्नान घाट, जहाँ पर कुम्भादि में बड़ी भीड़ होती है, वही स्थान 'हर की पैड़ी' के नाम से पुकारा जाता है। इसे ही हरिद्वार का शृङ्गार कहना चाहिए—

जब घाटों में, नगर और के मन्दिरों में आरती होने लगती है; घंटे और घड़ियालों की मधुर रागिनी दिशाओं को गुँजाने लगती है और उस का प्रतिध्वनि गंगा के कल कल में मिल कर दूर के पहाड़ों में टकराती है, तब हृदय एक अपूर्व उल्लास – एक महान् उत्प्रेक्षा का अनुभव करने लगता है। जिस समय स्त्रियाँ सायंस्नान करती हुई दोनों में दीप मालिकाएँ जला कर उन्हें पवित्र जाह्नवी में प्रवाहित करती हैं और उन की छोटी छोटी टोलियाँ गंगा की प्रबल धारा में हिलती डोलती हुई आगे बढ़ती हैं—दूर दूर तक जाती हैं, उस समय की यह स्वर्गीय छवि देख देख कर मनुष्य चकित और विमोहित रह जाता है! आकाश की झिल मिल तारिकाएँ यह दृश्य देख देख कर क्या सोचती होंगी—वे ही जानें।

'मलकुंड'—गंगा की धारा ही में है; पर यहाँ पर उस का वेग कम है। यह सब से अनाकीर्ण एवं सुन्दर स्थान है। इस के घाट की सीढ़ियाँ सङ्ग मरमर की बनी हैं और ऊपर गंगा जी तथा अन्य कितने ही देवी देवताओं के मन्दिर हैं। इस में मछलियाँ रहती हैं। वे बहुत शान्त हैं—एकदम नहीं डरतीं। लोग उन्हें आटे की गोलियाँ खिलाते और उनकी आपस की छीना झपटी कौतुक से देखते हैं।

'भीम गदा'—इस को कोई कोई भीम घोड़ा भी कहते हैं।

भाग उस 'सती कुण्ड' स्तूत है। कहा जाता है, उस में स्नान करने वाली स्त्रियां का सौभाग्य सती जैसा अचल होता है। ज्ञान प्राप्त कर जिस स्थान पर दक्ष न त्रिमूर्ति की स्थापना की थी वहीं पर आज दक्ष प्रजापति का मन्दिर है। किन्तु उस में अब कोई बाहरी रमणीयता नहीं है। नील धारा घाट पर अवस्थित गौरीशङ्कर और बिल्वकेश्वर महादेव के मन्दिर सुन्दर और प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर गङ्गा जी में पड़े हुए गोल मटोल पत्थर देखने मे बड़े ही कौतूहल वर्द्धक जान पड़ते हैं।

'हृषिकेश' —भी हरिद्वार के समीप ही है। यहाँ जाने के लिए रेल भी है और मोटर-बस भी। हरिद्वार से हृषिकेश तक रास्ते का दृश्य बड़ा सुन्दर है। एक ओर गङ्गा और दूसरी ओर वृक्ष, लता, पर्वत। दूर तक यही सिलसिला है। हृषिकेश में भी आबादी बढ़ रही है। यहा भरत और राम जी के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। प्राकृतिक शोभा यहा की भी बड़ी मनो हारिणी है। यहाँ पर गङ्गाजी घूम सी गई है। अतएव धारा प्रबल होकर बहती है और हरिद्वार के कल-कल नाद के स्थान पर हर हर का शब्द सुन पड़ता है। पास ही एक पहाड़ पर टिहरी गढ़वाल के महाराज का 'नरेन्द्र' नगर है। दूर से इस का दृश्य सुन्दर दीख पड़ता है।

'लक्ष्मण झूला'—हृषिकेश से थोड़ी दूर आगे है। यह प्रकृति की गोद में बसा है। तीन ओर ऊँची पर्वत मालाएँ

बहादुर जैजनाथ जी द्वारा संस्थापित रामतीर्थ पुस्तकालय भी देखने की चीजों में मुख्य है। यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य निरखने ही लायक है।

मुझे हरिद्वार में केवल चार दिन ठहरने का अवसर मिला। किन्तु वह यात्रा और वह स्थान, कई कारणों से, जन्म भर न भूलूँगा। और उन में भी हरिद्वार की वह सन्ध्या! घंटे घड़ियालों और आरती स्तुति का वह रागिनी! कलकलिनी गंगा का वह कल कल छल छल शब्द! उसकी लहरों के थपेड़ों से उठने वाली झीनी झीनी जल फुहार! तट पर टहलने वालों का वह आनन्द विहार! वहाँ की चहल पहल विद्युत प्रकाश के तरंग-वीचियों पर पड़ने की अपूर्व शोभा—अनन्त सौंदर्य की रचना—ये दृश्य तो आज भी आँखों के आगे ज्यों-के त्यों नाच रहे हैं। इस यात्रा के अनुभव सचमुच अपूर्व थे। उन्हें इस जीवन में मैं भूल नहीं सकता।

श्रीगिरीन्द्र नारायण सिंह
[बालक से]

— o —

हिन्दी

भारतवर्ष में इतिहास और
और महाभारत। दोनों
की बहादुरी का वर्णन
जय की कथा मशहूर है। उ
जैसे अगडधत्त वीरों के छक्के
जाम्बवान आदि वीर मा
घसीट मारा था—जालन्
कभी उनकी बहादुरी की बा
उन्हीं के समान एक दूसरे वीर
जैसे वे त्रेता युग के अन्त में हुए
अन्त में हुआ था। इसकी कथा
इसका अभिमन्यु था—अर्जुन का
कृष्ण का भांजा, सुभद्रा का लाल
बल और तेज का क्या ठिकाना
समान, रूप की सुघराई में मामा के
हैं रूप के हाथ में प्रचण्ड गाडीव,
हाथ में खोंपड़ी चूरन गदा, और
हाथ में ससार भर की शक्ति की बा
का नया खून लडाई के जोश से
की उमङ्ग से उसकी बोटी बोटी फड़
रोम रोम से शक्ति की बिजली नि

भारतवर्ष में इतिहास के दो बड़े बड़े पुराने ग्रन्थ हैं—रामायण और महाभारत। दोनों जग जाहिर हैं। दोनों में वीर बालकों की बहादुरी का बखान मिलता है। रामायण में कुश और लव की कथा मशहूर है। उन दोनों वीर बालकों ने भरत लक्ष्मण जैसे धुरन्धर वीरों के छक्के छुड़ा दिए थे—सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान आदि बाँके लड़ाकों की पूँछ पकड़ पकड़कर घसीट मारा था—बालक क्या थे, आफ़त के परकाले थे। कभी उनकी बहादुरी की बातें भी सुनाऊँगा। पर इस समय उन्हीं के समान एक दूसरे वीर बालक की कथा सुनाता हूँ—जैसे वे त्रेता युग के अन्त में हुए थे वैसे ही यह द्वापर युग के अन्त में हुआ था। इसकी कथा महाभारत में लिखी है। नाम इसका अभिमन्यु था—अर्जुन का बेटा, भीम का भतीजा, श्री कृष्ण का भांजा, सुभद्रा का लाडला! भला ऐसे बहादुर के बल और तेज का क्या ठिकाना! बाण चलाने में बाप के समान, रूप की सुघराई में मामा के समान। एक ओर देखता है बाप के हाथ में प्रचण्ड गाण्डीव, दूसरी ओर बड़े ताऊ के हाथ में खोपड़ी चूरन गदा, और सामने की ओर मामा के हाथ में संसार-भर की शक्ति की बागडोर। फिर क्या न उस का नया खून लड़ाई के जोश से उबलता रहे—क्या न बल की उमङ्ग में उसकी बोटी बोटी फड़कती रहे—क्यों न उसके रोम रोम से शक्ति की बिजली निकलती रहे—क्यों न वह

गते हुए समुद्र की छाती चीर कर बड़ा भारी जहाज आगे बढ़ता जा रहा है।

पर अब कैसे आगे बढ़ेंगे? वह देखो, महाराज वृहद्बल आकर भिड़ गए—रोक दिया रास्ता—छिड़ गई लड़ाई—छिप गए अभिमन्यु उनके बाणों में। पर यह क्या? बाणों की घटा को तितर बितर कर तेजस्वी सूर्य की तरह अभिमन्यु निकल आए! मारा कस कर बाण—वृहद्बल की ध्वजा कट कर उड़ गई आकाश में! और उनकी चलाई हुई गदा भी बीच ही में कट कर खण्ड खण्ड हो गई! यह लो, अभिमन्यु ने उनके घोड़े भी मार डाले। बेचारे को बिना रथ का कर छोड़ा! अब भला वह पैदल क्या लड़ेंगे? ऐसे वैसे वीर का सामना थोड़े है? लोहे का चना है—वज्र का टुकड़ा है! ठट्ठा नहीं है!

अब वह देखो, बूढ़े दादा भीष्म भी अपने लिलार का पसीना नहीं पोछ पाते! क्या करें, पड़पोता दम नहीं लेने देता। ज़ोर तो बहुत लगाते हैं बूँदियों की तरह तीर बरसा रहे हैं; उनके साथ साथ कृतवर्मा आदि वीर भी एड़ी-चोटी का पसीना एक किए हुए हैं, मगर अभिमन्यु तनिक टस से मस नहीं होते—शरीर लहू लुहान हो गया है, बड़े बड़े धुरन्धर वीर घेरे हुए हैं; फिर भी पट्ठे की आँच तनिक कम नहीं होती। देखते देखते दादा की ऊँची ध्वजा काट ही डाली,

महारथी अम्बष्ठ के पीछे पड गये। फिर उसको भी पानी पानी कर उड़ा—बेचारा बिना रथ और हथियार का हारकर सिर पर पांव रख कर भागा।

किन्तु दुर्योधन अपने वीर पुत्र की यह करारी हार भला कब सह सकता था। उसने अपने राक्षस मित्र अलम्बुष राक्षस को उकसाया दिया। वह एकाएक अभिमन्यु पर टूट पड़ा—बड़ा ही घनघोर माया युद्ध ठाना, पर अभिमन्यु ने बड़ी मुस्तैदी से उसके सारे हौसले पस्त कर दिये—वह भी रथ छोड़ अपनी जान लेकर पैदल ही भाग खड़ा हुआ।

पाठकों की यह जीत दुर्योधन कैसे देखता रहे? वह युधिष्ठिर को पकड़ने की तरकीबें साधने लगा—उनको बीहड़ घेरे में डालकर पकड़ने के लिए चक्रव्यूह की लड़ाई ठानने का बन्दोबस्त किया। अर्जुन को कुरुक्षेत्र से अलग दूर हटा ले जाने का बीड़ा—उसके मित्र और त्रिगर्तदेश के राजा—सुशर्मा ने उठाया, क्योंकि उनके रहते युधिष्ठिर का बाल बांका होना टेढ़ी खीर थी।

सुशर्मा के झमेले में श्रीकृष्ण सहित अर्जुन के फँस जाने से युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हो गये। माथा ठोंककर कहने लगे—अब चक्रव्यूह की भूल भुलैया में पैठकर उसके—पर नहीं—सात पेचीले दरवाजों को कौन भेदेगा?

बड़े ताऊ को बड़ी उदासी के साथ ऐसा कहते देखकर

चुके थे, पर इस बार तो अभिमन्यु ने देखते ही देखते उनको तलवार के घाट उतार दिया। मचा हाहाकार! जुट पड़े सब-के सब अभिमन्यु पर! लेकिन इतने पर भी उस वीर बालक के मँजे हुए हाथ की सफाई देख कर सब के ललाट में सिकुड़न पड़ गई। द्रोण और कर्ण सरीखे महारथी भी दाँतों तले उँगली दबा कर रह गए।

जब अभिमन्यु ने सब के नाकों दम कर दिया, तब दुर्योधन की सलाह से कर्ण ने उनके धनुष की डोरी काट डाली, और उसी समय अश्वत्थामा ने उनका कवच छेद डाला, और लग हाथों दुःशासन ने भी उनके सारथी और घोड़ों को मार कर लक्ष्मण कुँअर की आग बुझा ली। किन्तु सब होने पर भी अभिमन्यु के चेहरे पर तनिक सिकुड़न नहीं आई! टूटे रथ का चक्का लेकर सब की खबर लेने लगे। उस समय वह अपने मामा श्रीकृष्ण की तरह सुदर्शन चक्र धारण कर प्रलय मचाते हुए से देख पड़े। जब द्रोण ने उस पहिए को भी काट डाला, तब उन्होंने गदा उठाई, और अपने बड़े ताऊ भीम की तरह गदा-युद्ध में शोभायमान हो कर शत्रु की सेना में हैजा फैला दिया! तब तक उधर से दुःशासन का बेटा, जो गदा-युद्ध में बड़ा शौकीन था, अखाड़े में उतर आया। दोनों नौजवान छोकरे दिल खोल कर लड़े, और लड़ते लड़ते एक दूसरे की गदा से घायल होकर बेहोश गिर पड़े।